संस्थापित १८६७ ई.

ओ३म्

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२८ ● अंक : २३ ● ०८ जून, २०२३ (गुरुवार) आषाढ़ कृष्णपक्ष पंचमी सम्वत् २०८० ● दयानन्दाब्द १६६ वेद व मानव सृष्टि सम्वत्:१६६०८५३१२४

परमात्मा के प्रतिद्वन्दी (Competitor)

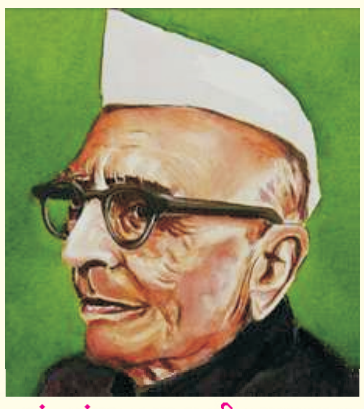

-पं. गंगा प्रसाद जी उपाध्याय

पूज्य पं० गंगा प्रसादजी उपाध्याय उर्दू भाषा के भी अद्वितीय लेखक थे । 'खुदा के रकीब' शीर्षक से उन्होंने यह विचारोत्तजक रोचक लेख लिखा था । यह एक से अधिक बार उर्दू पत्रों में छंपा । मेरी दृष्टि में यह उनके सर्वश्रेष्ठ लेखों में से एक हैं। मेरी चिरकाल से यह इच्छा थी कि इसका हिन्दी अनुवाद करके प्रकाशित करवाऊँ । आशा है । आर्य संसार के विचारशील पाठक महान् दार्शनिक लेखक के इस आध्यात्मिक एवं बौद्धिक प्रसाद को पाकर स्वयं को भाग्यशाली मानेंगे । – अनुवादक – राजेन्द्र जिज्ञासु ,

सारे आस्तिक आस्तिक नहीं हैं , न सारे नास्तिक नास्तिक हैं ।

सारे आस्तिक आस्तिक नहीं हैं , न सारे नास्तिक नास्तिक । नास्तिकों की संख्या तो उंगलियों पर गिनी जा सकती है और इनमें भी वास्तविक नास्तिक बहुत थोड़े हैं परन्तु यदि सब आस्तिकों के मन व मस्तिष्क को टटोला जाय तो इन आस्तिकों में ईश्वर के उपासकों की संख्या बहुत थोड़ी मिलेगी ।

नास्तिकों का कोई मन्दिर नहीं : – नास्तिकों के कोई मन्दिर नहीं हैं । न उनके पुजारी , न वे चेले बनाते हैं अथवा कण्ठी माला देते हैं । आस्तिकों के मन्दिरों , मस्जिदों व गिरजाघरों की भरमार है । एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है

काशी का हर कंकर शंकर है।

यह बात केवल काशी तक ही नहीं है । प्रत्येक देश में ऐसा बातें मिलती है । परन्तु , यदि इतने नास्तिक होते जितनी की गिनती बताई जाती है तो संसार ऐसा न होता जैसा कि आज है ।

सच्चिदानन्द परमात्मा से व्याप्त सृष्टि में आनंद का अभाव है। घर में अशान्ति , मुहल्ले में अशान्ति , नगर में , प्रान्त में , देश में और सारे संसार में अशान्ति है । एक विचारशील मनुष्य प्रश्न उठता है , क्या वास्तव में मनुष्य ईशोपासक हैं ? जो परमात्मा की सत्ता ही नहीं मानता वह प्रतिद्वन्द्विता भी क्या करेगा ? उसकी दृष्टि में कोई ऐसा प्रतिद्वन्द्वी नहीं जिसे ईश्वर कहा जा सके अथवा जिसका उसको भय हो । अथवा दूसरी शक्तियां हैं जिनको वह अपना प्रतिद्वन्द्वी समझता है । तथा जिनको वश में करने के लिए वह सदा प्रयत्नशील रहता है परन्तु जो परमेश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं वे तो सब प्रकार से ईश्वर को अपने वश में करने की चिन्ता करते रहते हैं ।

भक्त के वश में हैं भगवान – अर्थात भक्ति क्या है ? भगवान पर नियंत्रण करने का एक साधन । कहते हैं कि बाबा तुलसीदास जी एक मन्दिर में दर्शन के लिये गए । वह मन्दिर था कृष्ण भगवान का जिसमें कृष्ण की मूर्ति बांसुरी बजा रही थी । तुलसीदास थे राम के उपासक । राम के सच्चे भक्त थे । उनसे वह मन्दिर राम से रहित देखकर न रहा गया । (यह कहो कि सहा न गया) । मचल गए । " मैं तो तब दर्शन करूंगा जब मूर्ति धनुषवाण हाथ में लेकर राम का रूप धारण करेगी ।

ईश्वर की आज्ञा या ईश्वर को आज्ञा : – कहा जाता है कि ऐसा ही हुआ। कृष्ण की मूर्ति राम की मूर्ति बन गई । इस कहानी से पता चलता है कि भक्ति का उद्देश्य ईश्वर की आज्ञा का पालन करना नहीं है । प्रत्युत्त ईश्वर से अपनी आज्ञा का पालन करवाना है । क्या यह सच्ची ईश्वर भक्ति अथवा ईश्वर की पूजा हैं ।

ईश्वर के इतने प्रतिद्वन्द्वी : – आस्तिक संसार में ईश्वर के अनेक प्रतिद्वन्द्वी हैं । जो ईश्वर के भक्तों का ध्यान ईश्वर से हटाकर अपनी ओर खीचते रहते हैं । वे सब स्थान तो ईश्वर के स्थान पर पूजे जाते हैं , ईश्रर के प्रतिद्वन्द्वी हैं ।

इन सबमें प्रथम स्थान गुरुओं का है । कहावत प्रसिद्ध है जिसने गुरु के दर्शन कर लिये उसने ईश्वर के दर्शन कर लिए । अतः गुरु का स्थान ईश्वर के स्थान से अधिक समझा जाता है ।संसार में चाहे हिन्दू धर्म , चाहे अन्य मतों में जितने भी सम्प्रदाय हैं सबमें गुरु की महत्ता पर बल दिया गया है । तर्क यह है कि तुम ईश्वर को साक्षात् नहीं देख सकते . . . . गुरु तो सामने खड़ा है अतः गुरु को पूजो ! अनेक लोगों का यह विश्वास है कि गुरु ईश्वर का साक्षात स्वरूप है । इसलिये वे गुरु की पूजा को ही ईश्वर – पूजा समझते हैं ।

गुरु गिरिधर दोनों खड़े किसके लागूं पाय ।

गुरु को शीश नवाय जिन गिरिधर दिये बताय ।

इन सबका भाव यह है कि गुरु की पूजा पहले करो फिर ईश्वर की और जब गुरुओं की पूजा होने लगी तो ईश्वर की पूजा संसार से लुप्त हो गई क्योंकि गुरु की पूजा को ही पर्याप्त समझा गया। जिस गुरु ने गिरधर को बता दिया वह प्रसन्न हो जायेगा और गिरधर को भी प्रसन्न कर सकेगा।

ईश्वर को भौतिक वस्तुयें नहीं चाहिये : – ईश्वर की पूजा में ईश्वर भौतिक वस्तु नहीं है । न ही उसको भौतिक पदार्थों की

क्रमशः पृ. ५.....

वेदामृतम्

ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्ता, अपामीवां बाधमानो मृधश्च।
अभिश्रीणन् पयः पयसाभि गोनाम्, इन्द्रस्य त्यं तव वयं सखायः।।

ऋ. ९.९७.४३

हे जीवात्मन् ! तुम 'पवमान सोम' हो, शुभ प्रेरणा देकर पवित्र कर सकने-वाले हो तुम हमें पवित्र करो। तुम सांसारिक कुटिलता से प्रभावित न होकर ऋजुगामी और सरल बने रहो। तुम वर्जनीय पाप के हंत्ता बनो, हमारा मन और हमारी इन्द्रियाँ यदि पाप-विचार या पाप-कर्म में प्रवृत्त होने लगें, तो तुम उन्हें उस पथ पर जाने से रोको । यदि समाज में वर्जनीय पाप और अपराध की वृत्ति बढ़ गई है, तो तुम उसका हनन करो। यदि हमारे मन में हिंसा-वृत्तियाँ जन्म ले रही हैं और यदि हम आत्म-हिंसा या पर-हिंसा में लिप्त हो गये हैं, तो तुम उन हिंसा-वृत्तियों और हिंसाओं को धक्का देकर हमसे दूर कर दो। हमारी ज्ञानेन्द्रिय रूप गौएँ ग्राह्य-विषय-रूप घास को चरकर जो दर्शन, श्रवण आदि से जन्य ज्ञान-दुग्ध मन और बुद्धि को अर्पित करती हैं, उसमें हे आत्मन् ! तुम अपना रस भी मिलाओ और उसमें पकाकर इन्द्रियजन्य ज्ञान को विशुद्ध तथा निर्मल कर लो। चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ तो भद्र-अभद्र सब प्रकार का दर्शन, श्रवण आदि करती हैं और भद्र-अभद्र सब प्रकार का ज्ञान तुम्हें अपित करती हैं। यदि भद्र या अभद्र जैसा भी ज्ञान-दुग्ध वे तुम्हें समर्पित करेंगी, उसे उसी रूप में तुम पान कर लोगे, तो तुम आधि-व्याधियों के घर बन जाओगे। अतः इन्द्रियों से आहृत ज्ञान-दुग्ध को अपने रस के मिश्रण तथा परिपाक से परिशुद्ध करके ही स्वयं पान करो तथा अन्य ज्ञान-पिपासुओं को भी पान कराओ। अन्यथा तुम्हारे द्वारा किया हुआ ज्ञान-प्रसार वैसा ही होगा, जैसे अतिथियों को बिना छना, विन-औटाया, तिनकों आदि से मिश्रित दूध पिलाना। उससे न पीनेवाले को तृप्ति मिलेगी, न पिलानेवाले को संतोष।

हे आत्मन् सोम ! तुम 'इन्द्र' प्रभु के सखा हो, हम तुम्हारे सखा हैं। 'इन्द्र' के पास पहुँचने के लिए भी पहले तुमसे ही सखित्व स्थापित करना होता है। यदि हम तुम्हारे सच्चे सखा बन गये, तो अपने सखा के पास तुम हमें स्वतः ही पहुँचा दोगे। तब हम आत्मा और परमात्मा दोनों का सख्य पाकर परम संतृप्त हो जायेंगे। आओ हे आत्मन् ! हम तुम्हारे प्रति मैत्री का हाथ बढ़ाते हैं।

साभार-वेदमंजरी

महर्षि दयानन्द सरस्वती का सत्योपदेश

बाबू श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय संगृहीत एवं पण्डित श्री घासीराम जी रचित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित' ग्रन्थ से संकलित उपदेश । -भावेश मेरजा

१. भारत में यज्ञ की प्रथा उठ जाने के पश्चात् मूर्त्तिपूजा चल पड़ी और लोगों का इस प्रकार विश्वास हो गया कि अग्नि, वायु आदि का एक-एक अधिष्ठात्री देवता है, परन्तु यह कपोल-कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।

२. मैक्समूलर को ईसाई मत का बहुत पक्षपात है । यदि उसने वेदों का ऐसा अनर्थ किया है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि उसका हार्दिक अभिप्राय यह है कि भारतवासी वेदों के ऐसे अर्थों को देख कर भ्रम में पड़ जावें और वेदों को छोड़ कर बाइबिल को ग्रहण कर लें । अतः उसका अनुवाद प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

३. यदि ब्राह्मण वेदों को कण्ठस्थ करके सुरक्षित न रखते तो वेद कहां रहते ?

४. हम किसी को शिष्य नहीं बनाते हैं और जो हमारे सिद्धान्तों को मानता है वही हमारा सेवक व शिष्य है और जो लोग हमारे कार्य में सहायक होते हैं वही हमारे भाई हैं ।

५. हमारे पास मन्त्र देने की कोई फुंकनी नहीं है जिससे हम किसी के कान में मन्त्र फूंके और मन्त्र तो सारे वेद में हैं ही, हम क्या मन्त्र देंगे ?

६. (स्त्रियों को उपदेश) पति-सेवा करना ही तुम्हारा धर्म है और अपने पतियों से ही उपदेश लेना तुम्हारा कर्तृतव्य है । मन्दिरों आदि स्थानों में आना-जाना और साधु-संन्यासियों के दर्शनों के लिए इधर-उधर घूमना, स्त्री-जाति के लिए अत्यन्त अनुचित है। स्त्री-जाति का मुख्य धर्म पति-सेवा और उत्तम रीति से सन्तति का पालन ही है ।

७. उपासना काल में उपासक ईश्वर के सत्संग में मग्न होते हैं । ऐसे समय में कोई कितना ही बड़ा मनुष्य आए उपासकों को खड़ा न होना चाहिए, क्योंकि परमेश्वर से बड़ा कोई नहीं है । ऐसा करने से उपासना के

क्रमशः पृ. ७.....

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

आर्य समाज की आवश्यकता

वेद में संपूर्ण भूमि आर्यों को देने का उल्लेख है (अहं भूमिमूददामार्याय) महर्षि दयानंद सरस्वती आर्यों के धर्म को सर्वोत्तम पुरातन व ईश्वर द्वारा दिया गया मानते हैं। यह तथ्य सर्वथा उचित भी है क्योंकि आर्य वैदिक धर्म से अलग अन्य तथाकथित धर्म अपनी आयु, विचार, कर्म व आदर्श के दृष्टिकोण से बराबरी तो दूर की बात है, कोसों दूर है। आर्य धर्म आत्मविचार व ब्रह्म ज्ञान के धरातल पर टिका है। जिसके संबंध में अन्य धर्मावलंबी स्वप्न में भी सोच नहीं सकते। आत्मज्ञान आर्य धर्म का मूल है। इसी के कारण आर्यों का उत्कर्ष हुआ। आत्म ज्ञान के पतन के कारण ही हम सैकड़ों वर्ष गुलाम रहे। भविष्य में देश की उत्कर्षता आत्मज्ञान से चमकेगी। इस आत्मज्ञान रूपी तत्व का मूल स्रोत वेद है, महर्षि इसी कारण अटल वेद अनुरागी थे।

आर्य समाज की स्थापना का मूल कारण स्वामी जी का यही था। समाज में व्याप्त पाखंड, अंधभक्ति, वितण्डतावाद के विरुद्ध लोगों को जागरूक करके वेद मार्ग पर लाना वह जानते थे। कि समाज संशोधन, समाज सुधार व समाज संस्कार के बिना इस देश का कल्याण नहीं हो सकता। महर्षि केवल समाज सुधारक ही नहीं थे बल्कि समाज संस्कारक भी थे। अन्य मत पंथों के विषय में स्वामी जी लिखते हैं कि ''यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान प्रत्येक मत में पाए जाते हैं। (परंतु यदि) वे पक्षपात छोड़कर सर्व तंत्र सिद्धांत को स्वीकार करें। जो जो बातें सब के अनुकूल हैं और सब में सत्य हैं उनको ग्रहण करके और जो बातें एक दूसरे के विरुद्ध पाई जाती हैं उनको त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तें वर्तावें तो जगत का पूर्ण हित हो जाए। विद्वानों के विरोध ही से अविद्वानों में विरोध बढ़कर विविध दुःखों की वृद्धि और सुखों की हानि होती है। यह हानि स्वार्थी मनुष्यों को प्यारी है परंतु इसने सर्वसाधारण को दुःख सागर में डुबो दिया।''

आज देश में आर्य समाज की महती आवश्यकता है, नित्य अनेकों घटनाएं हमारे युवा वर्ग के युवक-युवतियों को बरगला कर जिहादी व कट्टर मानसिकता के मत पंथी धर्म परिवर्तन करने में लगे हैं। जिस आर्य समाज के उद्देश्यों को लेकर ऋषि ने स्पष्ट घोषणा की- ''संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है'' वह आर्य समाज अपने मार्ग से भटक गया है। आपसी स्वार्थ व पद लोलुपता आदि कहें या स्वामी दर्शनानंद के शब्दों में ''आर्य समाज के सभ्यों की मूर्खता के कारण निस्तेज सा हो गया है।'' हमें अपने मन भेदों को सुलझा कर एकजुट होकर समाज संस्कार के लिए योजनाबद्ध तरीके से कार्य करना होगा।

खंडन रूपी खड्ग लेकर व शास्त्रार्थ समर में पुनः विद्वानों व सन्यासियों को आगे आना होगा, वरना समय के पास क्षमा जैसा कोई शब्द नहीं होता। देश बचेगा तभी समाज रहेगा अन्यथा की स्थिति में सारे आकलन धरे के धरे रह जाएंगे। वर्तमान विकट परिस्थिति में केवल आर्य समाज ही इसका मुकाबला कर सकता है।

महर्षि वेद विश्वासी के साथ-साथ पक्के ईश्वर विश्वासी थे। उनके लिखे ग्रंथ कदम कदम पर पथ प्रदर्शक के रूप में हमारे पास हैं। जो कभी पराजय नहीं होने देंगे। स्वामी जी ने सदैव सत्य और परमात्मा पर भरोसा किया। यह महत्वपूर्ण तथ्य हमें गाँठ के रूप में बांध लेनी होगी।

महाभारत के उद्योग पर्व में महात्मा विदुर जी ने सत्य ही लिखा है--

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।

अर्थात इस संसार में दूसरे को निरंतर प्रसन्न करने के लिए प्रिय बोलने वाले प्रशंसक लोग बहुत हैं परंतु सुनने में अप्रिय विदित हो और वह कल्याण करने वाला वचन हो उसका कहने और सुनने वाला पुरुष दुर्लभ है क्योंकि सत् पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना दोष सुनना परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना और दुष्टों की यही रीत है कि सम्मुख गुण कहना और परोक्ष में दोषों का प्रकाश करना, जब तक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं सुनता या कहने वाला नहीं कहता तब तक मनुष्य दोषों से छूटकर गुणी नहीं हो सकता।

-सम्पादक

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ त्रयोदश समुल्लास

अथ कृश्चीनमत विषयं व्याख्यास्यामः

जबूर का दूसरा भाग

काल के समाचार की पहली पुस्तक

मत्ती रचित इज्जील

७३- देखो ! लोग एक अर्धाङ्गी को जो खटोले पर पड़ा था उस पास लाये और यीशु ने उनका विश्वास देख के उस अर्धाङ्गी से कहा हे पुत्र ! ढाढस कर, तेरे पाप क्षमा किये गये हैं। मैं धर्मियों को नहीं परन्तु पापियों को पश्चात्ताप के लिये बुलाने आया हूँ।।

- इं० म०प० ९। आ० २ १३ ।।

(समीक्षक) यह भी बात वैसी ही असम्भव है जैसी पूर्व लिख आये हैं। और जो पाप क्षमा करने की बात है वह केवल भोले लोगों को प्रलोभन देकर फंसाना है। जैसे दूसरे के पिये मद्य, भांग अफीम खाये का नशा दूसरे को नहीं प्राप्त हो सकता वैसे ही किसी का किया हुआ पाप किसी के पास नहीं जाता किन्तु जो करता है वही भोगता है, यही ईश्वर न्याय है। यदि दूसरे का किया पाप-पुण्य दूसरे को प्राप्त होवे अथवा न्यायाधीश स्वयं ले लेवें वा कर्तृताओं ही को यथायोग्य फल ईश्वर न देवे तो वह अन्यायकारी हो जावे। देखो ! धर्म ही कल्याणकारक है, ईसा वा अन्य कोई नहीं। और धर्मात्माओं के लिये ईसा की कुछ आवश्यकता भी नहीं और न पापियों के लिये क्योंकि पाप किसी का नहीं छूट सकता।। ७३।।

७४- यीशु ने अपने बारह शिष्यों को अपने पास बुला के उन्हें अशुद्ध भूतों पर अधिकार दिया कि उन्हें निकालें और हर एक रोग और हर एक व्याधि को चङ्गा करें।। बोलनेहारे तो तुम नहीं हो परन्तु तुम्हारे पिता का आत्मा तुम में बोलता है।। मत समझो कि मैं पृथिवी पर मिलाप करवाने को नहीं परन्तु खड्ग चलवाने आया हूँ। मैं मनुष्य को उसके पिता से और बेटी को उसकी मां से और पतोहू को उसकी सास से अलग करने आया हूँ।। मनुष्य के घर ही के लोग उसके वैरी होंगे।।

-इ० म०प० १०। आ० १। २०३४ द्य ३५ द्य ३६।।

(समीक्षक) ये वे ही शिष्य हैं जिन में से एक ३०) रुपये के लोभ पर ईसा को पकड़ावेगा और अन्य बदल कर अलग-अलग भागेंगे। भला ! ये बातें जब विद्या ही से विरुद्ध हैं कि भूतों का आना वा निकालना, विना ओषधि वा पथ्य के व्याधियों का छूटना सृष्टिक्रम से असम्भव है। इसलिए ऐसी-ऐसी बातों का मानना अज्ञानियों का काम है। यदि जीव बोलनेहारे नहीं, ईश्वर बोलनेहारा है तो जीव क्या काम करते हैं ? और सत्य वा मिथ्याभाषण का फल सुख वा दुःख को ईश्वर ही भोगता होगा, यह भी एक मिथ्या बात है। और जैसा ईसा फूट कराने और लड़ाने को आया था वही आज कल कलह लोगों में चल रहा है। यह कैसी बड़ी बुरी बात है कि फूट कराने से सर्वथा मनुष्यों को दुःख होता है और ईसाइयों ने इसी को गुरुमन्त्र समझ लिया होगा। क्योंकि एक दूसरे की फूट ईसा ही अच्छी मानता था तो ये क्यों नहीं मानते होंगे? यह ईसा ही का काम होगा कि घर के लोगों के शत्रु घर के लोगों को बनाना, यह श्रेष्ठ पुरुष का काम नहीं।।७४।।

७५- तब यीशु ने उनसे कहा तुम्हारे पास कितनी रोटियां हैं। उन्होंने कहा सात और छोटी मछलियां।। तब उसने लोगों को भूमि पर बैठने की आज्ञा दी। और उसने उन सात रोटियों को और मछलियों को धन्य मान के तोड़ा और अपने शिष्यों को दिया और शिष्यों ने लोगों को दिया।। सो सब खा के तृप्त हुए और जो टुकड़े बच रहे उनके सात टोकरे भरे उठाये। जिन्होंने खाया सो स्त्रियों और बालकों को छोड़ चार सहस्र पुरुष थे।।

- ई० म०प० १५ आ० ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ।।

(समीक्षक) अब देखिये ! क्या यह आजकल के झूठे सिद्धों इन्द्रजाली आदि के समान छल की बात नहीं है? उन रोटियों में अन्य रोटियां कहां से आ गईं? यदि ईसा में ऐसी सिद्धियां होतीं तो आप भूखा हुआ गूलर के फल खाने को क्यों भटका करता था? अपने लिये मिट्टी पानी और पत्थर आदि से मोहनभोग, रोटियां क्यों न बना लीं? ये सब बातें लड़कों के खेलपन की हैं। जैसे कितने ही साधु वैरागी ऐसे छल की बातें करके भोले मनुष्यों को ठगते हैं वैसे ही ये भी हैं।। ७५।।

७६- और तब वह हर एक मनुष्य को उसके कार्य्य के अनुसार फल देगा।।

-इं० म०प० १६ आ० २७ ।।

(समीक्षक) जब कर्मानुसार फल दिया जायेगा तो ईसाइयों का पाप क्षमा होने का उपदेश करना व्यर्थ है और वह सच्चा हो तो यह झूठा होवे। यदि कोई कहे कि क्षमा करने के योग्य क्षमा किये जाते और क्षमा न करने के योग्य क्षमा नहीं किये जाते हैं यह भी ठीक नहीं। क्योंकि सब कर्मों के फल यथायोग्य देने ही से न्याय और पूरी दया होती है।। ७६ ।।

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

अग्नि का अर्थ परमात्मा

(एक पादरी साहब ने आगरा में स्वामी जी से प्रश्न किया- दिसम्बर सन् १८८०)

मुंशी गिरधरलाल साहब वकील ने वर्णन किया कि-

एक पादरी साहब हमारे मकान पर आये थे। उन्होंने प्रश्न किया कि आपने वेदभाष्य में जो अग्नि को परमेश्वर कहा है, वहां अग्नि का अर्थ परमेश्वर नहीं हो सकता। स्वामी जी ने कहा कि प्रथम तो व्याकरण के अनुसार इस शब्द का अर्थ परमेश्वर हो सकता है। इस पर उनकी कोई शंका शेष न रही।

(लेखराम पृ० ५२४)

ऋषि दयानन्द का भक्तिवाद

-डॉ० भवानीलाल भारतीय

ऋषि दयानन्द के धार्मिक तथा सामाजिक सुधार कार्य में अधिक समय रहने तथा उनके राष्ट्रीय जागरण के प्रथम पुरोधा होने के कारण अनेक लोगों में यही धारणा बन गई है कि भारत की आध्यात्मिक चेतना को जगाने तथा भगवत् भक्ति के प्रसार में उनका योगदान अल्प है। ऐसा विचार उन लोगों का है जिन्होंने दयानन्द का सूक्ष्म अध्ययन नहीं किया। गहराई से देखें तो पता चलता है कि दयानन्द का गृहत्याग और संन्यास ग्रहण जिस विशिष्ट लक्ष्य को ध्यान में रखकर हुआ था, उसके पीछे अध्यात्म ज्ञान को प्राप्त करने की उनकी तीव्र ललक ही थी। शिवरात्रि-प्रसंग से उन्होंने सीखा कि निखिल विश्व ब्रह्माण्ड का नियन्त्रण करने वाली सत्ता जड़ नहीं हो सकती। वह कल्याणकारी शिव कौन है? तथा कैसा है जिसकी वंदना वेदों में अनेकत्र मिलती है? अपने घर में घटित हुए मृत्यु प्रसंगों ने उन्हें जिन्दगी और मौत के रहस्य को जानने की प्रेरणा दी। संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने अपने योग गुरुओं से उस 'राजयोग' का प्रशिक्षण प्राप्त किया जो समाधि सिद्धपूर्वक परमात्मा का साक्षात्कार कराता है। भावी जीवन में परम देव परमात्मा के प्रति उनका प्रणत भाव सदा रहा। अपने महान् कार्यों की पूर्ति में उन्होंने परमात्मा देव की सहायता की याचना की और आजीवन एक आस्तिक भक्ति का जीवन बिताकर अपने आराध्य के प्रति स्वयं को अपर्ण कर दिया। स्वामीजी की धारणा थी कि धर्म, समाज और राष्ट्र को समुन्नत करने का जो महद् अभियान उन्होंने चलाया है उसमें परमात्मा की प्रेरणा तथा सहायता ही सर्वोपरि रही है। वे परमात्मा के अनन्य उपासक थे। समर्पण भाव को लेकर जगन्नाथ के सूत्रधार के सम्मुख आने वाले से एक ऐसे विनम्र सेवक थे जिन्होंने अत्यन्त भाव प्रवण होकर अपने आराध्य देव से कहा था- ''आपका तो स्वभाव ही है कि अंगीकृत को कभी नहीं छोड़ते।'' शास्त्रार्थ समर में उतरने से पहले दयानन्द दीर्घकाल तक परमात्मा की उपासना करते थे, मानों अपने आराध्य से सत्य पक्ष की विजय दिलाने की प्रार्थना करते हो। लोकहित के अपने सभी कार्यों और अनुष्ठानों में वे परमात्मा को अपना परम सहायक मानते थे।

छः दर्शन शास्त्रों की तर्ज पर कालान्तर में नारद और शाण्डिल्य के नाम से भक्ति सूत्र रचे गए। उनमें सूत्र शैली से भक्ति तथा उसके आनुषंगिक प्रसंगों की विस्तृत मीमांसा प्रस्तुत की गई है। आचार्य शाण्डिल्य ने भक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया है- या परा अनुरक्तिः ईश्वरे सा भक्तिः। अर्थात् परमात्मा के प्रति पराकोटि की अनुरक्ति (प्रेम) ही भक्ति है। इन ग्रन्थों में नवधा भक्ति का जो उल्लेख मिलता है उससे अनुमान होता है कि भक्ति सूत्रों की रचना उस युग में हुई थी जब पौराणिक मत का प्रचलन हो चुका था तथा जनता में प्रतिमा पूजन, अवतारवाद आदि की धारणाएं चल पड़ी थीं। इन ग्रन्थों में बृज गोपिकाओं के आदि के सन्दर्भ दिए गए हैं, वे इन्हें पुराणों के परवर्ती काल का होना बताते हैं।

ऋषि दयानन्द के परमात्मा की भक्ति और व्यक्ति का मनोनिवेश करने वाला एक ग्रन्थ लिखा था 'आर्याभिविनय' उनका विचार था चारों वेद संहिताओं में प्रत्येक से न्यून से न्यून पचास मन्त्रों को लेकर उनकी भगवत्भक्ति से ओतप्रोत भावपूर्ण व्याख्या की जाये। इस ग्रन्थ में प्रथम तथा द्वितीय प्रकाश (ऋग्वेद के ५३ तथा यजुर्वेद की ५५ मन्त्र युक्त) लिखे गए तथा छपे। अवशिष्ठ साम तथा अथर्ववेद के विनय प्रधान मन्त्रों की परमात्मा की स्तुति है या प्रार्थना, इसका संकेत वे मन्त्रारम्भ में कर देते हैं। ग्रन्थारम्भ के स्वरचित श्लोकों में दयानन्द ने परमात्मा की भावपूर्ण स्तुति की है।

सर्वात्मा सच्चिदा-नन्दोऽनन्तो यो न्यायकृच्छुचिः। भूयात्तमां सहायो नो दयालुः सर्वशक्तिमान्।

अर्थात् जो परमात्मा सबका आत्मा, सत्, चित्, आनन्दस्वरूप, अनन्त, अज, न्याय करनेवाला, निर्मल, सदा पवित्र, दयालु, सब सामर्थ्य वाला, हमारा इष्टदेव है, वह हमको सहाय नित्य होवे।

साथ ही इन श्लोकों में वे यह संकेत देते हैं कि समस्त लोगों के हित तथा परमात्मा के ज्ञान के लिए वे मूल मन्त्रों के साथ-साथ उनको लोक-भाषा में व्याख्यान जन साधारण को बोध कराने के लिए दे रहे हैं। दयानन्द की सम्मति में जो ब्रह्मविमल, सुखाकारण, पूर्णकाम, तृप्त, जगत् में व्याप्त है वही वेदों से प्राप्य है। जिसके मन में इस ब्रह्म की प्रकटता (यथार्थ ज्ञान) है, वही मनुष्य ईश्वर का आनन्द का भागी है और वही सदैव सबसे अधिक सुखी है। ऐसे मनुष्य को धन्य मानना चाहिए। इन प्रास्वाविक श्लोकों से हमें दयानन्द के भक्तिवाद को समझने में सहायता मिलती है।

आर्याभिविनयम् की रचना केवल ईश्वर भक्ति में लोगों को नियोजन करने के लिए ही की गई हो, ऐसी बात नहीं है। दयानन्द मध्यकाल के अनेक भक्तों की भांति लोगों को भाग्यवाद तथा पुरुषार्थहीनता का पाठ पढ़ाने वाले नहीं थे। यही कारण है कि आर्याभिविनय में एक और प्रभुभक्ति तथा अपने आराध्य के प्रति समर्पण की भावना दिखाई पड़ती है। तो साथ ही उस- 'राजाधिराज परमात्मा' से स्वराज्य तथा आर्यों (सत्पुरुषों) के अखण्ड चक्रवर्ती साम्राज्य की याचना भी की गई है। परमात्मा के प्रति दयानन्द की अनन्य प्रीति को देखना चाहें तो इस ग्रन्थ में सर्वप्रथम व्याख्यात ऋग्वेद के मन्त्र 'शं नो मित्रः शं वरुणः' की व्याख्या के आरम्भ में परमात्मा के प्रति किए गए सम्बोधनों की छटा को देखें। यहां न्यूनातिन्यून २७ सम्बोधनों से दयानन्द ने अपने आराध्य परमात्मा देव को सम्बोधित किया है। इसमें से अनेक सम्बोधनों में अनुप्रास प्रधान शब्दों का सौन्दर्य दर्शनीय है। यथा- विश्वविनोदक, विनियविधीप्रद, विश्वास-विलासक तथा निर्मल, निर्सह, निरामय, निरुप्रदव आदि एक ओर यदि परमात्मा को 'सज्जन सुखद' कहा तो साथ ही उसे 'दुष्ट सुताड़न' कहना भी वे नहीं भूले। दयानन्द की दृष्टि में परमात्मा चतुर्विध पुरुषार्थ के प्रदाता हैं- वे यदि धर्म सुप्रापक हैं तो अर्थ-सुधारक तथा सुकामवर्द्धक भी हैं। मोक्ष प्रदाता तो वे हैं ही- यदि वे 'राज्य विधायक' हैं तो 'शत्रु विनाशक' भी हैं। वस्तुतः इस ग्रन्थ को लिखकर दयानन्द ने भारत के भक्ति सिद्धान्तों में एक नूतन क्रान्ति की थी, अतः दयानन्द के भक्तिवाद का तात्त्विक अध्ययन अपेक्षित हैं।

इस ग्रन्थ के अन्य मन्त्रों के व्याख्यानों में उन्होंने परमात्मा के लिए जो सम्बोधन सूचक शब्द लिखे हैं, वे भी व्यंजनापूर्ण हैं। जब वे परमात्मा को 'महाराजाधिराज परमेश्वर' कहकर सम्बोधित करते हैं तो उनकी प्रार्थना होती है- 'हमको साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिए'। उनकी विनय है कि हम सुनीतियुक्त हों जिससे कि हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े (प्रार्थना सं० १७)। 'वय' जयेम त्वया युजा (ऋ० १/१०२/४) मन्त्र की व्याख्या के आरम्भ में उन्होंने परमात्मा को 'महाधनेश्वर' (मधवन्) तथा 'महाराजा धिराजेश्वर' कहकर पुकारा तथा उसने चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य (रूपी) धन को प्राप्त कराने की प्रार्थना की। यह ईश्वरभक्त दयानन्द ही है जो परमात्मा से आर्यों के अखण्ड भी विनय करता है कि 'अन्य देशवासी' राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों। (यजुर्वेद के मन्त्र ३७/१४ 'इषे पिन्वस्व ऊर्जे पिन्वस्व' की व्याख्या में) सामान्यतया भक्त अपने आराध्य से सुख, सौभाग्य, आरोग्य, धन-धान्य, कीर्ति, ऐश्वर्य आदि की याचना करता है। दयानन्द ने अपने परमात्मा से देश के लिए स्वराज्य तथा शिष्टजनों (आर्यों) के साम्राज्य की याचना के प्रति जो सम्बोधन शब्द प्रयोग किये हैं वे भी विशिष्ट अर्थवता लिये हैं। शतक्रतों (अनन्त कार्येश्वर), महाराजाधिराज परमेश्वर, सौख्य-सौख्य-प्रदेश्वर, सर्वविद्ययम आदि। वस्तुतः अनन्त गुणों वाले परमात्मा के सम्बोधन भी अनन्त ही होंगे।

परमात्मा की भक्ति दिखाने की वस्तु नहीं है। मध्यकाल में मूर्तिपूजा, नाम जप, तिलक, कण्ठी-छाप आदि साम्प्रदायिक प्रतीकों के धारण को भक्ति का साधन माना गया था। दयानन्द की सम्मति में परमात्मा के विविध गुणों के वाचक शब्दों के उल्लेखपूर्वक उस परम सत्ता को नमन करना ही उसकी भक्ति का उत्कृष्ट रूप है। यदि हम उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के आरम्भ के मंगलसूचक वाक्यों को देखें तो ज्ञान होगा कि स्वामीजी के लिए परमात्मा क्या है? और कैसा है? यहां कुछ ऐसे ही ग्रन्थारम्भ में लिखे गए नमस्कार विषयक वाक्य दिए जा रहे हैं। जो दयानन्द की दृष्टि में परमात्मा के स्वरूप तथा गुणों के ज्ञापक हैं-

१. ओ३म् सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः -सत्यार्थप्रकाश

२. ओ३म् तत्सत्परब्रह्मणे नमः -आर्याभिविनय

३. ओ३म ब्रह्मात्मे नमः -वर्णोच्चारण शिक्षा

४. ओ३म् खम्ब्रह्मा -काशी शास्त्रार्थ

५. ओ३म खम्ब्रह्मा -सत्यधर्म विचार

६. गोकरुणानिधि में परमात्मा का स्मरण इस प्रकार किया गया है। 'ओ३म् नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय' इसमें दयानन्द का भाव यह है कि जो विश्वभर में है वही तो गो आदि उपयोगी प्राणियों का भरण-पोषण करने का भी सामर्थ्य रखता है। जो ईश्वर सर्वशक्तिमान् है उसमें गौ आदि की रक्षा करने का भी सामर्थ्य है।

७. ओ३म् नमो निर्भ्रमाय जगदीश्वराय -अनुभ्रामोच्छेदन

वेद के निर्भ्रान्त ज्ञान को देनेवाला परमात्मा स्वयं निर्भ्रम है। ऐसे सार्थक नमस्कार वाक्य लेखन की परमात्मा के प्रति सच्ची भक्ति दर्शाते हैं।

●●●

निर्वाचन

आर्य समाज गुलावटी, बुलन्द शहर

प्रधान	**:**	**श्री वीरेन्द्र सिंह लौर**
मंत्री	**:**	**श्री सुनील कुमार**
कोषाध्यक्ष	**:**	**श्री सौरभ गर्ग**

वैदिक संस्कृति व संस्कारों को आज के युग में बचाने की प्रमुख चुनौती

-पं० उम्मेद सिंह विशारद

उन्नीसवीं शताब्दी में वैदिक संस्कृति को बचाने के लिये भारत के जिन महापुरूषों ने जन्म लिया उनके आमुख महर्षि दयानन्द संरस्वती जी हुये थे। उन्होंने वैदिक धर्म विरूद्ध जो भारत की जनता में संस्कार व संस्कृति आचलित थी उन सभी चुनौतियों को स्वीकार करके रण क्षेत्र में कूद पड़े थे। वे समय के दास बन कर नहीं आये थे। समय को अपना दास बनाने के लिये आये थे। उन्होंने वैदिक संस्कृति का आचार करके भारतवासियों की विचारधारा को ही बदल डाला।

उन्होंने कहा जिन संस्कारों व मान्यताओं के कारण परिवारों में शिष्टाचार पितृभक्ति व उच्च आदर्श संस्कार व आत्म शान्ति समाप्त हो रही हो और जिसके कारण विदेशी पाश्चात्य विकृत संस्कृति हमारे परिवारों में घुस कर चूल्हे तक पहुँच गयी हो और परिवारों के सदस्यों के खून के कण-कण में समा रही हो उसको बचाना बुद्धि जीविकों का प्रथम कार्य है।

भारत वर्ष में सदियों से सुप्त पड़ी चेतना अव्यक्त से व्यक्त की तरफः-

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य व अन्त में भारत की संस्कृति में एक नया मोड़ आया था। सदियों से सोई पड़ी यह चेतना जब भारत में अंगड़ाई लेकर आँखें खोलने लगी थी तब १७७२ में बंगाल में राजाराम मोहन राय और १८३४ में राम कृष्ण परम हंस, और १८२४ में महर्षि दयानन्द सरस्वती और १८६३ में मद्रास में थियोसोफिकल सोसाईटी और १८८४ में महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज ने और मुसलमानों में चेतना जगाने हेतु सर सैयद अहमद ने जन्म लिया। इसी काल के आस-पास स्वामी विवेकानन्द ने जन्म लिया। ये सब भारत की विभूतियाँ थी जो इस देश के नव निर्माण का सपना लेकर गंगा और हिमालय की देश भूमि का सदियों का संकट काटने हेतु आकट हुई थी।

आज असली समस्या अपनी संस्कृति को पुर्नजीवित करने की हैः-

आज अधिकांश रूप में वैदिक संस्कृति के मूल अहिंसा, सत्य, ब्रहंचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास, ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य, वर्ण व्यवस्था, सोलह संस्कार, अपरिग्रह, निश्कामता, त्याग, तपस्या, ईश्वर, जीवात्मा, भोग, त्याग, इहलोक, परलोक, आज से शब्द आंशिक रूप में खोखले हो चुके हैं, इन शब्दों के व्यवहार को पुनः जीवन भरना मूल समस्या है। भारत में जितनी भी अध्यात्मिक सांस्कृतिक संस्थाऐं हैं उनको वैदिक संस्कृति व संस्कारों को प्राचीन भारतीय वैदिक सभ्यता पर एक रूपता से लाना होगा। तभी संसार की कोई संस्कृति भारतीय वैदिक संस्कृति टक्कर में नहीं टिक सकेगी।

आज जिसको हम अपनी संस्कृति समझ रहे हैं :-

आज हम संस्कृति का अर्थ नाचना, गाना, अन्ध परम्पराओं में चलना और चलाना गाना बजाना और सांस्कृति मण्डलों को विदेश में भेजना समझ रहे है, वह वैदिक संस्कृति को छुपा रहे हैं। नाचने गाने से भारतीय संस्कृति का उद्धार नहीं हो सकता है आज वेदों के अखण्ड स्त्रोत, उपनिषद् और दर्शन ग्रन्थों के स्वर कहीं न कहीं आधुनिक व पाश्चात्य संस्कृति में डूबते जा रहे है। धार्मिक अनार्श व सामाजिक कुरूतिया व राजनैतिक साम्यवाद की विकृत संस्कृति बलवती हो गयी है।

मुसलमानों और अंग्रेजों के शासन काल में भी हमारी संस्कृति जीवित रहीः-

इस्लाम के सामने दुनिया की अन्य संस्कृतियों ने सिर झुका लिया था परन्तु भारतीय संस्कृति इस्लाम से टक्कर लेती रही इसको बचाने के लिये उत्तर भारत के सिक्खों के गुरूओं ने और दक्षिण भारत में शिवा जी ने लोहा लेना शुरू किया। मुसलमानों का आठ सौ वर्षों का काल निकल गया पर भारतीय संस्कृति ने गर्दन नहीं झुकाई। परन्तु अंग्रेजों की भारत में आने की प्रक्रिया भिन्न रही। अंग्रेज अपने साथ अपनी संस्कृति भी साथ लाये थे किन्तु वह सौदागर बन कर आये थे। अंगेजों की संस्कृति मुसलमानों की संस्कृति से बलवती थी। मुस्लिम संस्कृति धर्म पर आधारित थी और अंग्रेजों की नहीं थी वह भौतिक व सांसारिक थी। दोनों संस्कृतियों की जब टक्कर हुई तो भारतीय संस्कृति के अंजर-पंजर ढीले हो गये। किन्तु भारतीय संस्कृति नष्ट होने पर भी जीवित रही वही संस्कृति अंग्रेजों के चले जाने पर आज जब एक शव के रूप में भी पड़ी है। आज हम संस्कृति का नाम भर लेते हैं। सच्चाई यह है कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद हमारी बची कुची वैदिक आस्था भी उठ गई है।

हमारी वैदिक संस्कृति को युवा वर्ग क्यों उपेक्षित करते हैं :-

क्या हमारी संस्कृति में कोई कमी है जो युवा वर्ग उपेक्षा करता है। किन्तु कमी होते हुये भी हमारी संस्कृति जीवित है। फर्क है तो पाश्चात्य संस्कृति ने व भारत में एक वैदिक धर्म न होने से हजारों मत मतान्तरो के चलन से युवा वर्ग में चारित्रिक वैदिक आध्यात्मिक कमी आ रही है और आज के युग में युवा वर्ग को भटकने का कारण वैदिक संस्कार व शिक्षा की कमी है। आज हमें योग गुरू जी रामदेव बाबा जी से कुछ उम्मीद जगी है वह ब्रहंम्चारियों को तैयार करके वैदिक शिक्षा से दुनिया में वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे है। उन्होंने एक टी०वी० चैनल वैदिक चैनल खोलकर बड़ा कार्य किया है वह आस्था पर नित्य योग के साथ-साथ वेदों का आचार भी कर रहे है। सच्चे रूप में परोक्ष व अपरोक्ष रूप से वह भारतीय संस्कृति व संस्कारों को जीवन दे रहे है।

मर्यादा पुरूषोतम श्री राम के काल से ही वैदिक संस्कृति में विकृती आारम्भः-

श्री राम के काल से ही भारतीय संस्कृति में अनाचार आारम्भ हो गया था, उदाहरण तह-मनु महाराज के सात पुत्र थे जिसकी एक शाखा में भागीरथ, अंशुमान, दलीप, रघु आदि हुये, दूसरी शाखा में सत्यवादी हरिश्चन्द्र आदि हुये। वैशस्वत मनु के पश्चात सूर्य वंश की ३६ पीढ़िया बीत जाने पर श्री राम अयोध्या में जन्म लेते है। श्री राम के काल में तीन संस्कृतियाँ स्पष्ट देखी जाती है। एक आर्य संस्कृति दूसरी वानर संस्कृति तीसरी राक्षस संस्कृति। आारम्भ में एक ही वंश था बाद में काल चक्र में रहन-सहन में परिवर्तन आता गया विभिन्न संस्कृतियां फैल गयी, पर तीनों ही वैदिक संस्कृति को मानते थे। तीनों के आमुख केन्द्र थे, आर्य संस्कृति का केन्द्र अयोध्या, वानर संस्कृति का केन्द्र किष्कन्धा और राक्षस संस्कृति का केन्द्र लंका था। वानर अयोध्या वासियों की तरह थे। वानर का अर्थ बन्दर नहीं अपितु वन में रहने वाला था, और राक्षस भी मनुष्य की तरह थे, और आर्य लोग तपस्या व वैदिक मर्यादा पर चलते थे, और राक्षस लोग खावों पीयो मौज से रहो स्वेच्छाचारी थे। वानर और आर्य एक तरफ थे और राक्षस दूसरी ओर थे कालान्तर में राक्षस संस्कृति महाभारत काल तक चरम पर थी और आज भी दिनों दिन राक्षस संस्कृति का विस्तार हो रहा है। अन्तर क्रिया शैली व व्यवहार बदल गये है। राक्षस संस्कृति को रोकना बुद्धिजीवियों के लिये एक भयंकर चुनौती बन गयी है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के आर्य समाज को चुनौती :-

आर्य समाज अपने जन्म काल के १४८ वर्षों से वैदिक संस्कृति को बचाये हुये है केवल जीवित रखा हुआ है विस्तार सामान्य रूप से हुआ। चारों ओर अवैदिक मतों की गुरूओं की बाढ़ आयी हुई है। आज आर्य समाज की आवाज नक्कार खाने में तूती की आवाज हो रखी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश के युवाओं का ध्यान संस्कृति से हट कर भ्रष्ट राजनीति के तरफ चला गया है। हर कोई मेम्बर सैकेट्री, मंत्री बनना चाहता है। हम राजनीति का विरोध नहीं कर रहे है किन्तु वैदिक सिद्धान्तों पर आधारित आदर्श राजनीति की आशा करते है। जब संस्कृति का अर्थ शक्ति प्राप्त करना हो जाता है तब राजनीति का अर्थ भ्रष्टाचार हो जाता है। जब तक राजनीति में उच्च संस्कार, संस्कृति व सभ्यता नहीं आ जाती तब तक वह अशान्ति का सूचक ही बनेगी।

आर्य समाज के नेतृत्व को व भारत के धर्माचार्यों के राष्ट्रवादियों को व आदर्श वैदिक संस्कृति की पोशक वेताओं को मिलकर संयुक्त रूप से ईश्वरीय सिद्धान्त व वेदों की शिक्षानुसार जो सर्व सुखकारी है मिल कर व्यापक रूप से पाश्चात्य, संस्कृति के सामने वैदिक संस्कृति व संस्कारों व सभ्यता की बड़ी लकीर खीचनी होगी तभी हमारी वैदिक संस्कृति जीवित रह सकेगी।

प्रेस विज्ञप्ति

सभी आर्य बंधुओं को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आर्य रत्न ठा. विक्रम सिंह इस वर्ष १६ सितंबर २०२३ को अपने जीवन के ८० वसंत पूर्ण करने जा रहे हैं। महर्षि दयानंद एवं आर्य समाज के सिद्धांतों के प्रति उनकी अगाध निष्ठा, वैदिक संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए किए गए उनके अतुल पुरूषार्थ तथा वैदिक विद्वानों, संन्यासियों, आचार्यों व आर्य संस्थाओं के संरक्षण व संवर्धन के लिए उनके द्वारा किए जा रहे महनीय प्रयासों को देखते हुए आर्य नेताओं व विद्वज्जनों की दिल्ली में हुई बैठक (जनवरी ११. २०२३) में निर्णय लिया गया कि ८० वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में उनका एक भव्य समारोह में अभिनंदन किया जाए।

उनके लिए भेंट किए जाने वाले अभिनंदन ग्रंथ की तैयारी के लिए आर्य जगत के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान डा. ज्वलंत कुमार शास्त्री की अध्यक्षता में एक संपादक मंडल भी गठित किया गया है। आर्य समाज के सभी नेताओं, मनीषियों, विद्वानों, आचार्यों, आचार्याओं, उपदेशकों आदि से अनुरोध है कि ठा. विक्रम सिंह जी के संबंध में यदि आपके पास कोई संस्मरण हो, किसी कार्यक्रम के फोटोग्राफ हों अथवा उनके व्यक्तित्व-कृतित्व से संबंधित जानकारियां व्यक्तिगत अनुभव हों तो तुरंत टाइप करवाकर या हस्तलिखित रूप में उसे हमारे साथ साझा स्पीड पोस्ट अथवा ई-मेल द्वारा उपरोक्त पते पर करने हेतु अनुरोध है। इसी प्रकार वैदिक सिद्धांतों की वर्तमान युग में प्रासंगिकता, महर्षि दयानंद व आर्य समाज का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान, शिक्षा व राजनीति के विषय में महर्षि दयानंद का चिंतन, महर्षि दयानंद का राष्ट्रवाद आदि विषयों पर विद्वज्जनों से अपने लेख भेजने हेतु निवेदन है। आर्य कवियों से भी अनुरोध है किया जाता है कि आप भी ठाकुर विक्रम सिंह जी के जीवन से संबंधित अपनी काव्य रचना शीघ्र ही भेजने का कष्ट करें।

इस अवसर पर किए जाने वाले समारोह के संबंध में आपके पास यदि कोई सुझाव हों तो अवश्य अवगत कराएं। इस अद्भुत आयोजन में आपके पूर्ण सहयोग की कामना है। तन-मन-धन से इस आयोजन में सहभागी बन आर्य समाज के नवनिर्माण के प्रयासों के साक्षी बनें।

डा. आनंद कुमार, IPS
संयोजक ठाकुर विक्रम सिंह
अभिनंदन ग्रंथ समिति
मो. ९८१०७६४७९५

ईश्वर के ६० विभिन्न नाम और भ्रान्ति निवारण

डॉ० डी.के. गर्ग

भाग-१

ईश्वर निराकार और एक ही है तथा उसके अनेको नाम उसके कार्यो के अनुसार है इसलिए ईश्वर को शरीरधारी बना देना और नए नए रूप देना कही भी उचित नहीं है।

१- (अंचु गतिपूजनयोः) (अग, अगि, इण् गत्यर्थक) धातु हैं, इनसे 'अग्नि' शब्द सिद्ध होता है। 'गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति, पूजनं नाम सत्कारः।' 'यो ऽंचति, अच्यते ऽगत्यं गत्येति सोऽयमग्निः' जो ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम 'अग्नि' है।

२- 'ज्योतिर्वै हिरण्यं, तेजो वै हिरण्यमित्यैतरेयशतपथब्राह्मणे' 'यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उत्पत्तिनिमित्तमधिकरणं स हिरण्यगर्भः' जिसमें सूर्यादि तेज वाले लोक उत्पन्न होके जिसके आधार रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजःस्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम, (उत्पत्ति) और निवासस्थान है, इससे उस परमेश्वर का नाम 'हिरण्यगर्भ' है। इसमें यजुर्वेद के मन्त्र का प्रमाण-

हिरण्यगर्भः समवर्तूतताग्रे भूतस्य जातः
पतिरेक आसीत् ।
स दा धार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै स
देवाय हविषा विधमे ।।

इत्यादि स्थलों में 'हिरण्यगर्भ' से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है।

३- (वा गतिगन्धनयोः) इस धातु से 'वायु' शब्द सिद्ध होता है। (गन्धनं हिसनम्) 'यो वाति चराऽचरंजगद्धरति बलिनां बलिष्ठः स वायुः' जो चराऽचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करता और सब बलवानों से बलवान् है, इससे उस ईश्वर का नाम 'वायु' है।

४- (तिज निशाने) इस धातु से 'तेजः' और इससे तद्धित करने से 'तैजस' शब्द सिद्ध होता है। जो आप स्वयंप्रकाश और सूर्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करने वाला है, इससे ईश्वर का नाम 'तैजस' है। इत्यादि नामार्थ उकारमात्र से ग्रहण होते हैं।

५- (ईश ऐश्वर्ये) इस धातु से 'ईश्वर' शब्द सिद्ध होता है। 'य ईष्टे सवैकृश्वर्यवान् वर्तूतते स ईश्वरः' जिस का सत्य विचारशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है, इससे उस परमात्मा का नाम 'ईश्वर' है।

६- (ञिमिदा स्नेहने) इस धातु से औणादिक 'क्त' प्रत्यय के होने से 'मित्र' शब्द सिद्ध होता है। 'मेद्यति, स्निह्यति स्निह्यते वा स मित्रः' जो सब से स्नेह करके और सब को प्रीति करने योग्य है, इस से उस परमेश्वर का नाम 'मित्र' है।

७- (वं वरणे, वर ईप्सायाम्) इन धातुओं से उणादि 'उनन्' प्रत्यय होने से 'वरुण' शब्द सिद्ध होता है। 'यः सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षून्धर्मात्मनो वृणोत्यथवा यः शिष्टैर्मुमुक्षुभिर्धर्मात्मभिर्व्रियते वर्य्यते वा स वरुणः परमेश्वरः' जो आत्मयोगी, विद्वान्, मुक्ति की इच्छा करने वाले मुक्त और धर्मात्माओं का स्वीकारकर्तृता, अथवा जो शिष्ट मुमुक्षु मुक्त और धर्मात्माओं से ग्रहण किया जाता है वह ईश्वर 'वरुण' संज्ञक है। अथवा 'वरुणो नाम वरः श्रेष्ठः' जिसलिए परमेश्वर सब से श्रेष्ठ है, इसीलिए उस ईश्वर का नाम 'वरुण' है।

८- (ऋ गतिप्रापणयोः) इस धातु से 'यत्' प्रत्यय करने से 'अर्य्य' शब्द सिद्ध होता है और 'अर्य्य' पूर्वक (माङ् माने) इस धातु से 'कनिन्' प्रत्यय होने से 'अर्य्यमा' शब्द सिद्ध होता है। 'योऽर्य्यान् स्वामिनो न्यायाधीशान् मिमीते मान्यान् करोति सोऽर्यमा' जो सत्य न्याय के करनेहारे मनुष्यों का मान्य और पाप तथा पुण्य करने वालों को पाप और पुण्य के फलों का यथावत् सत्य-सत्य नियमकर्ता है, इसी से उस परमेश्वर का नाम 'अर्य्यमा' है।

९- इस यजुर्वेद के वचन से जो जगत् नाम प्राणी, चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते-फिरते हैं, 'तस्थुषः' अप्राणी अर्थात् स्थावर जड़ अर्थात् पृथिवी आदि हैं, उन सब के आत्मा होने और स्वप्रकाशरूप सब के प्रकाश करने से परमेश्वर का नाम 'सूर्य्य' है।

९- (षुं अभिषवे, षूङ् प्राणिगर्भविमोचने) इन धातुओं से 'सविता' शब्द सिद्ध होता है। 'अभिषवः प्राणिगर्भविमोचनं चोत्पादनम्। यश्चराचरं जगत् सुनोति सूते वोत्पादयति स सविता परमेश्वरः' जो सब जगत् की उत्पत्ति करता है, इसलिए परमेश्वर का नाम 'सविता' है।

१०- (दिवु क्रीडाविजिगीषा-व्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु) इस वमातु से 'देव' शब्द सिद्ध होता है। (क्रीडा) जो शुद्ध जगत् को क्रीडा कराने (विजिगीषा) वमार्मिकों को जिताने की इच्छायुक्त (व्यवहार) सब चेष्टा के साधनोप- साधनों का दाता (द्युति) स्वयंप्रकाशस्वरूप, सब का प्रकाशक (स्तुति) प्रशंसा के योग्य (मोद) आप आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द देनेहारा (मद) मदोन्मत्तों का ताड़नेहारा (स्वप्न) सब के शयनार्थ रात्रि और प्रलय का करनेहारा (कान्ति) कामना के योग्य और (गति) ज्ञानस्वरूप है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'देव' है। 'यः कामयते काम्यते वा स देवः' जिस के सब सत्य काम और जिस की प्राप्ति की कामना सब शिष्ट करते हैं। 'यो गच्छति गम्यते वा स देवः' जो सब में व्याप्त और जानने के योग्य है, इस से उस परमेश्वर का नाम 'देव' है।

११ - (कुबि आच्छादने) इस धातु से 'कुबेर' शब्द सिद्ध होता है। 'यः सर्वं कुम्बति स्वव्याप्त्याच्छादयति स कुबेरो जगदीश्वरः' जो अपनी व्याप्ति से सब का आच्छादन करे, इस से उस परमेश्वर का नाम 'कुबेर' है।

१२- (पृथु विस्तारे) इस धातु से 'पृथिवी' शब्द सिद्ध होता है।' 'यः पर्थति सर्वं जगद्विस्तृणाति तस्मात् स पृथिवी' जो सब विस्तृत जगत् का विस्तार करने वाला है, इसलिए उस ईश्वर का नाम 'पृथिवी' है।

१३- (जल घातने) इस धातु से 'जल' शब्द सिद्ध होता है, 'जलति घातयति दुष्टान् सघांतयति अव्यक्तपरमाण्वादीन् तद् ब्रह्म जलम्' जो दुष्टों का ताड़न और अव्यक्त तथा परमाणुओं का अन्योऽन्य संयोग वा वियोग करता है, वह परमात्मा 'जल' संज्ञक कहाता है।

१४- (काशृ दीप्तौ) इस धातु से 'आकाश' शब्द सिद्ध होता है, 'यः सर्वतः सर्वं जगत् प्रकाशयति स आकाशः' जो सब ओर से सब जगत् का प्रकाशक है, इसलिए उस परमात्मा का नाम 'आकाश' है।

१५- (अद् भक्षणे) इस धातु से 'अन्न' शब्द सिद्ध होता है।

अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते। अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः।। तैत्तिद्र उपनि०।

अत्ता चराऽचरग्रहणात्।। यह व्यासमुनिकृत शारीरक सूत्र है।

जो सब को भीतर रखने, सब को ग्रहण करने योग्य, चराऽचर जगत् का ग्रहण करने वाला है, इस से ईश्वर के 'अन्न', 'अन्नाद' और 'अत्ता' नाम हैं। और जो इस में तीन वार पाठ है सो आदर के लिए है। जैसे गूलर के फल में कृमि उत्पन्न होके उसी में रहते और नष्ट हो जाते हैं, वैसे परमेश्वर के बीच में सब जगत् की अवस्था है।

१६- (वस निवासे) इस धातु से 'वसु' शब्द सिद्ध हुआ है। 'वसन्ति भूतानि यस्मिन्नथवा यः सर्वेषु वसति स वसुरीश्वरः' जिसमें सब आकाशादि भूत वसते हैं और जो सब में वास कर रहा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'वसु' है।

१७- (रुदिर् अश्रुविमोचने) इस धातु से 'णिच्' प्रत्यय होने से 'रुद्र' शब्द सिद्ध होता है।

'यो रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः' जो दुष्ट कर्म करनेहारों को रुलाता है, इससे परमेश्वर का नाम 'रुद्र' है।

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति,
यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति
यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते।।
यह यजुर्वेद के ब्राह्मण का वचन है।

जीव जिस का मन से ध्यान करता उस को वाणी से बोलता, जिस को वाणी से बोलता उस को कर्म से करता, जिस को कर्म से करता उसी को प्राप्त होता है। इस से क्या सिद्ध हुआ कि जो जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। जब दुष्ट कर्म करनेवाले जीव ईश्वर की न्यायरूपी व्यवस्था से दुःखरूप फल पाते, तब रोते हैं और इसी प्रकार ईश्वर उन को रुलाता है, इसलिए परमेश्वर का नाम 'रुद्र' है।

१८- आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वंम् तेन नारायणः स्मृतः।।
-मनुन अ० १। श्लोक १०।।

जल और जीवों का नाम नारा है, वे अयन अर्थात् निवासस्थान हैं, जिसका इसलिए सब जीवों में व्यापक परमात्मा का नाम 'नारायण' है।

१९- (चदि आह्लादे) इस धातु से 'चन्द्र' शब्द सिद्ध होता है। 'यश्चन्दति चन्दयति वा स चन्द्रः' जो आनन्दस्वरूप और सब को आनन्द देनेवाला है, इसलिए ईश्वर का नाम 'चन्द्र' है।

२०- (बन्ध बन्धने) इससे 'बन्धु' शब्द सिद्ध होता है। 'यः स्वस्मिन् चराचरं जगद् बध्नाति बन्धुवद्धर्मात्मनां सुखाय सहायो वा वर्तूतते स बन्धुः' जिस ने अपने में सब लोकलोकान्तरों को नियमों से बद्ध कर रक्खे और सहोदर के समान सहायक है, इसी से अपनी-अपनी परिधि वा नियम का उल्लंघन नहीं कर सकते। जैसे भ्राता भाइयों का सहायकारी होता है, वैसे परमेश्वर भी पृथिव्यादि लोकों के धारण, रक्षण और सुख देने से 'बन्धु' संज्ञक है।

●●●

पृष्ठ १ का शेष.....

आवश्यकता है । इसलिये ईश्वर की पूजा भौतिक वस्तुओं से नहीं होती । मन से ईश्वर का ध्यान करना ही तो ईश्वर की पूजा करना है परन्तु , गुरु तो एक मनुष्य है । उसका शरीर है । उसको शारीरिक आवश्यकतायें होना स्वाभाविक व आवश्यक है । उसे भोजन चाहिये , वस्त्र चाहिये , भवन चाहिये । अन्य सुख सुविधायें चाहियें । ये सब प्राप्त होने चाहिये । उसके चेले व चेलियों से ये सभी कुछ तभी तो मिलेगा जब कुछ ढोंग किया जाय और गुरु की महिमा जताने के लिये अनेक प्रकार की व्याख्यायें गढ़ी जायें । इसलिये आप देखेंगे कि गुरुओं की प्रसन्नता के लिये कितने यत्न किये जाते हैं । उनसे मन्नतें (कामनाये) मांगी जाती है । उनको स्नान कराया जाता है । उनके चरण तक धोकर पिये जाते हैं

एक राधा स्वामी मित्र का विचित्र उत्तर : मैंने एक बार अपने एक राधा स्वामी मित्र से पूछा , ' आप गुरु का जूठा क्यों खा लेते हो ? क्या यह गन्दा काम नहीं ? इससे तो गुरुओं का रोग भी लग सकता है ।

उस प्रतिष्ठित मित्र ने मुझसे एक प्रश्न पूछा , " क्या जूठा खाने से रोग लग सकता है ? मैंने कहा , हाँ , अवश्य लग सकता है "

मेरे मित्र ने उत्तर दिया कि " जिस प्रकार से शारीरिक रोग जूठा खाने से गुरु के शरीर से शिष्य के शरीर में आ सकता है इसी प्रकार जूठा खाने से गुरुओं की आध्यात्मिकता भी चेले भीतर प्रविष्ट हो सकती है । ' '

प्रत्येक भद्दे काम के लिये युक्ति दी जाती है : - उस दिन मुझे पता लगा कि प्रत्येक व्यक्ति का एक दर्शन है । गन्दे से गन्दे कार्य के लिये वह एक तर्क रखता है । भले ही कुतर्क हो परन्तु तर्क तो है और उस तर्क को परखना प्रत्येक छोटे - बड़े के बस की बात नहीं है । मेरे मित्र ने जो युक्ति दी थी वह में तो सुनने अच्छी ही लगती थी ।

गुरु जूठा खिलाकर विचार प्रविष्ट नहीं करा सकता : - कम से कम उस मित्र को पूर्ण विश्वास था कि वह ठीक तथा विरोधी को चुप करने वाली युक्ति दे रहा है । ऐसा लगता है कि इस प्रकार की युक्तियाँ चेलों के मध्य कहीं जाती होगी । यद्यपि युक्ति सर्वथा लचर व भ्रामक थी । रोग तो शारीरिक होने से जूठा खाने से एक शरीर से दूसरे में जा सकता है । रोग के कीटाणु थूक के साथ दूसरे शरीर में बहुत सुविधापूर्वक प्रवेश कर सकते हैं परन्तु , आध्यात्मिकता के तो कीटाणु नहीं होते । गुरु अपना जूठा खिलाकर अपने विचार तो चेले के भीतर प्रविष्ट नहीं कर सकता । यदि ऐसा होता तो विभिन्न विषयों के कालेजों के प्राध्यापक अपने शिष्यों को जूठन खिलाकर विद्वान बना दें । गुरु की जूठन खाने का व ईश्वर की पूजा का परस्पर कुछ भी सम्बन्ध नहीं हैं परन्तु लोग ईश्वर के स्थान पर गुरु को पूजते हैं ।

मेरी परिभाषा में गुरु ईश्वर के प्रतिद्वन्द्वी हैं : - मेरी परिभाषा में तो जो गुरु अपने चेले से पूजा कराता है , वह ईश्वर का प्रतिद्वन्दी हैं । संसार के मन्दिरों में देवताओं अथवा पूर्वजों की जो मूर्तियाँ पूजने के लिये रखी हुई हैं , वे सब ईश्वर के प्रतिद्वन्द्वी क्योंकि उनकी पूजा करने वाला यह समझ बैठता है कि अब ईश्वर की पूजा की आवश्यकता नहीं ।

ईश्वर नहीं देखा - मूर्ति दिखाई देती हैं : - लोग कहा करते हैं कि हमने ईश्वर नहीं देखा , हम इस मूर्ति को देख रहे हैं इसलिये इसी की पूजा करते हैं । यदि ईश्वर को देख पाते तो ईश्वर को पूजते ।

सो ईश्वर की खोज क्यों करें ? : - इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि हमने उसी को अपना ईश्वर मान लिया है । हमको अब किसी दूसरे ईश्वर की खोज में भटकने की आवश्यकता नहीं । कुछ लोगों को यह पट्टी भी पढ़ाई गई है कि ईश्वर की आत्मा गुरु के आत्मा में विलीन हो जाती है अत : गुरु के दर्शन भी ईश्वर के दर्शन हैं ।

ईश्वर भक्ति का आसन रिक्त होता है : - गुरु से आगे चलिये तो अवतार अथवा पैगम्बर लोगों के सामने आते हैं उन्होने अथवा उनके अनुयायियों ने सदा यह प्रयास किया है कि इन अवतारों अथवा पैगम्बरों को ईश्वर का प्रतिनिधि स्वीकार कर लिया जाय । एक बार परमात्मा का प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाय तो उनकी ही पूजा आरम्भ हो जाती है । ईश्वर की पूजा या तो सर्वथा विलुप्त हो जाती है अथवा अपना आसन पैगम्बर पूजा (Prophet worship) के लिये रिक्त कर देती है और सब लोग भगवान के स्थान पर पैगम्बर को मान लेते हैं । हजरत मुहम्मद ने अपने चेलों से स्पष्ट कहा है कि जो मेरे हाथ पर बैअत करेगा वह समझ ले की खुदा की बैअत (दीक्षा) कर रहा है ।

और पादरी कहेगा कि ईसा के बिना मुक्ति असम्भव है : - हजरत ईसामसीह को लोगों ने खुदा का पुत्र कहा , खुदा कहा और खुदा का उत्तराधिकारी स्वीकार किया । परिणाम यह निकला कि परमात्मा को भूल गये । यदि किसी पादरी के सामने जाकर यह कहिये कि मैं ईश्वर को मानता हूँ परन्तु ईसा को नहीं तो वह अविलम्ब कहेगा कि हजरत ईसा के पास आये बिना मुक्ति का प्राप्त होना असम्भव है।

और मूर्तियाँ भी ईश्वर की प्रतिद्वन्द्वी बन गई : - यही स्थिति अन्य मतों की है । श्रीकृष्ण की मूर्ति को पूज लो और ईश्वर की पूजा हो गई । राम की मूर्ति के सामने सिर झुका लो और ईश्वर की पूजा हो गई । इस प्रकार न केवल राम व कृष्ण हीं भगवान के प्रतिद्वन्द्वी हुए प्रत्युत उनकी मूर्तियाँ भी

क्रमशः पृ. ७.....

क्या संसार ऋषि दयानन्द के सत्य वैदिक सिद्धान्तों को समझ पाया है?

-मनमोहन कुमार आर्य

महर्षि दयानन्द (१८२५-१८८३) ने देश व समाज सहित विश्व की सर्वांगीण उन्नति का धार्मिक व सामाजिक कार्य किया है। क्या हमारे देश और संसार के लोग उनके कार्यों को यथार्थ रूप में जानते व समझते हैं? क्या उनके कार्यों से मनुष्यों को होने वाले लाभों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान विश्व व देश के लोगों को है? जब इन व ऐसे अन्य कुछ प्रश्नों पर विचार करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि हमारे देश व संसार के लोग महर्षि दयानन्द, उनकी वैदिक विचारधारा और सिद्धान्तों के महत्व के प्रति अनभिज्ञ व उदासीन हैं। यदि वह जानते होते तो उससे लाभ उठा कर अपना कल्याण कर सकते थे। न जानने के कारण वह वैदिक विचारधारा से होने वाले लाभों से वंचित हैं और नानाविध हानियां उठा रहे हैं। अतः यह विचार करना समीचीन है कि मनुष्य महर्षि दयानन्द की वैदिक विचारधारा के सत्य व यथार्थ स्वरूप को क्यों नहीं जान पाये? इस पर विचार करने पर हमें इसका उत्तर यही मिलता है कि महर्षि दयानन्द के पूर्व व बाद में प्रचलित मत-मतान्तरों के आचार्यों व तथाकथित धर्मगुरुओं ने अविद्या एवं हिताहित को सामने रखकर उनका विरोध किया और उनके बारे में मिथ्या प्रचार करके अपने-अपने अनुयायियों को उनके व उनकी विचारधारा को जानने व समझने का अवसर व स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की। आज भी संसार के अधिकांश लोग मत-मतान्तरों के सत्यासत्य मिश्रित विचारों व मान्यताओं से बन्धे व उसमें फंसे हुए हैं। सत्य से अनभिज्ञ वा अज्ञानी होने पर भी उनमें ज्ञानी होने का मिथ्या अहंकार है। रूढ़िवादिता के संस्कार भी इसमें मुख्य कारण हैं। इन मतों व इनके अनुयायियों में सत्य-ज्ञान व विवेक का अभाव है जिस कारण वह भ्रमित व अज्ञान की स्थिति में होने के कारण यदि आर्यसमाज के वैदिक विचारों व सिद्धान्तों का नाम सुनते भी हैं तो उसे संसार के मत-मतान्तरों व अपने मत-सम्प्रदाय का विरोधी मानकर उससे दूरी बनाकर रखते हैं।

महर्षि दयानन्द का मिशन क्या था? इस विषय पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि वह संसार के धार्मिक, सामाजिक व देशोन्नति संबंधी असत्य विचारधारा, मान्यताओं व सिद्धान्तों को पूर्णतः दूर कर सत्य मान्यताओं व सिद्धान्तों को प्रतिष्ठित करना चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने अपने पिता का घर छोड़ा था और सत्य की प्राप्ति के लिए ही वह एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक विद्वान के बाद दूसरे विद्वान की शरण में सत्य-ज्ञान की प्राप्ति हेतु जाते गये और उनसे उपलब्ध ज्ञान प्राप्त कर प्राप्त होने वाले सभी अर्वाचीन व प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन भी करते रहे। अपनी इसी धुन व उद्देश्य के कारण वह अपने समय के देश के सभी बड़े विद्वानों के सम्पर्क में आये, उनकी संगति की और उनसे जो विद्या व ज्ञान प्राप्त कर सकते थे, उसे प्राप्त किया और इसके साथ ही योगी गुरुओं से योग सीख कर सफल योगी बने। उनकी विद्या की पिपासा मथुरा में स्वामी विरजानन्द सरस्वती की पाठशाला में सन् १८६० से सन् १८६३ तक के लगभग ३ वर्षों तक वेदांग ग्रन्थों अष्टाध्यायी, महाभाष्य तथा निरुक्त पद्धति से संस्कृत व्याकरण का अध्ययन करने के साथ गुरु जी से शास्त्र चर्चा कर अपनी सभी भ्रान्तियों को दूर करने पर समाप्त हुई। वेद व वैदिक साहित्य का ज्ञान और योगविद्या सीखकर वह अपने सामाजिक दायित्व की भावना व गुरु की प्ररेणा से कार्य क्षेत्र में उतरे और सभी मतों के सत्यासत्य को जानकर उन्होंने विश्व में धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में असत्य व मिथ्या मान्यताओं तथा भ्रान्तियों को दूर करने के लिए सत्य मान्यताओं व परम्पराओं का मण्डन तथा असत्य बातों का खण्डन किया। प्रचलित धर्म-मत-मतान्तरों में जो सत्य था उसका उन्होंने अपनी पूरी शक्ति से मण्डन वा समर्थन किया। आज यदि हम स्वामी दयानन्द व आर्यसमाज के किसी विरोधी से पूछें कि महर्षि दयानन्द ने तुम्हारे मत की किस सत्य मान्यता वा सिद्धान्त का खण्डन किया तो इसका उत्तर किसी मत-मतान्तर वा उसके अनुयायी के पास नहीं है। इसका कारण ही यह है कि ऋषि दयानन्द ने सत्य का कभी खण्डन नहीं किया। उन्होंने तो केवल असत्य व मिथ्या ज्ञान का ही खण्डन किया है जो कि प्रत्येक मनुष्य का मुख्य कर्तव्य वा धर्म है।

दूसरा प्रश्न है कि यदि अन्य मत वालों से यह कहें कि क्या स्वामी दयानन्द जी ने वेद संबंधी अथवा अपने किसी असत्य व मिथ्या विचार व मान्यता का प्रचार किया हो तो बतायें? इसका उत्तर भी किसी मत के विद्वान, आचार्य व अनुयायी से प्राप्त नहीं होगा। अतः यह सिद्ध तथ्य है कि महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में कभी किसी मत के सत्य सिद्धान्त का खण्डन नहीं किया और न ही असत्य व मिथ्या मान्यताओं का प्रचार किया। उन्होंने केवल असत्य बातों व परम्पराओं का ही खण्डन और सत्य का मण्डन किया जो कि मनुष्य जाति की उन्नति के लिए सभी मनुष्यों व मत-मतान्तरों के आचार्यों को करना अभीष्ट है। इसका मुख्य कारण यह है कि सत्य वेद धर्म का पालन करने से मनुष्य का जीवन अभ्युदय को प्राप्त होता है और इसके साथ वृद्धावस्था में मृत्यु होने पर जन्म-मरण के बन्धन से छूट कर मोक्ष प्राप्त होता है।

यह भी विचार करना आवश्यक है कि सत्य से लाभ होता है या हानि और असत्य से भी क्या किसी को लाभ हो सकता है अथवा सदैव हानि ही होती है? वेदों के ज्ञान के आधार पर सत्य के सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द ने एक नियम बनाया है कि सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। यह नियम संसार में सर्वमान्य नियम है। अतः सत्य से लाभ ही लाभ होता है, हानि किसी की नहीं होती। हानि तभी होगी यदि हमने कुछ गलत किया हो। अतः मिथ्याचारी व्यक्ति व मत-सम्प्रदाय के लोग ही असत्य का सहारा लेते हैं और सत्य से डरते हैं। ऐसे मिथ्या मतों, उनके अनुयायी व प्रचारकों की मान्यताओं के खण्डन के लिए महर्षि दयानन्द को गलत नहीं कहा जा सकता। इस बात को कोई स्वीकार नहीं करता कि मनुष्य को जहां आवश्यकता हो वहां वह असत्य का सहारा ले सकता है और जहां सत्य से लाभ हो वहीं सत्य का आचरण करे। किसी भी परिस्थिति में असत्य का आचरण अनुचित, अधर्म वा पाप ही कहा जाता है। अतः सत्याचरण करना ही धर्म सिद्ध होता है और असत्याचरण अधर्म। महर्षि दयानन्द ने वेदों के आधार पर सत्यार्थ प्रकाश ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इन ग्रन्थों में उन्होंने मनुष्य के धार्मिक व सामाजिक कर्तव्यों व अकर्तव्यों का वैदिक प्रमाणों, युक्ति व तर्क के आधार पर प्रकाश किया है। सत्यार्थप्रकाश साधारण मनुष्यों की बोलचाल की भाषा हिन्दी में लिखा गया वैदिक धर्म का सर्वांगीण, सर्वाधिक महत्वपूर्ण व प्रभावशाली धर्मग्रन्थ है। धर्म व इसकी मान्यताओं का संक्षिप्त रूप महर्षि दयानन्द ने पुस्तक के अन्त में 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' लिखकर प्रकाशित किया है। यह स्वमन्तव्यामन्तव्य ही मनुष्यों के यथार्थ धर्म के सिद्धान्त व कर्तव्य हैं जिनका विस्तृत व्याख्यान सत्यार्थप्रकाश व उनके अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध है। उनके स्वमन्तव्यामन्तव्य की यह सभी मान्यतायें संसार के सभी मनुष्यों के लिए धर्मपालनार्थ माननीय व आचरणीय है परन्तु अज्ञान व अन्धविश्वासों के कारण लोग इन सत्य मान्यताओं से अपरिचित होने के कारण इनका आचरण नहीं करते और न उनमें सत्य मन्तव्यों को जानने की सच्ची जिज्ञासा ही है। इसी कारण संसार में मत-मतान्तरों का अस्तित्व बना हुआ है। इसका एक कारण यह भी है कि देश व संसार में धर्म सम्बन्धी सत्य व यथार्थ ज्ञान के संगठित प्रचार वा प्रचारकों की कमी है। यदि यह पर्याप्त संख्या में होते और अन्य मतावलम्बियों की तरह साधारण लोगों में प्रचार करते, तो देश और विश्व का चित्र वर्तमान से कहीं अधिक उन्नत व सन्तोषप्रद होता।

महर्षि दयानन्द ने सन् १८६३ से वेद वा वैदिक मान्यताओं का प्रचार आरम्भ किया था जिसने १० अप्रैल, १८७५ को मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना के बाद तेज गति पकड़ी थी। इसके बाद सन् १८८३ तक उन्होंने वैदिक मान्यताओं का प्रचार किया जिसमें वैदिक मत के विरोधियों व विधर्मियों से शास्त्र चर्चा, विचार विनिमय, वार्तालाप और शास्त्रार्थ सम्मिलित थे। अनेक मौलिक ग्रन्थों की रचना सहित ऋग्वेद का आंशिक और पूरे यजुर्वेद का उन्होंने भाष्य किया। उनके बाद उनके अनेक शिष्यों ने चारों वेदों का भाष्य पूर्ण किया। न केवल वेदों पर अपितु दर्शन, उपनिषद, मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण व महाभारत आदि पर भी भाष्य, अनुवाद, ग्रन्थ व टीकायें लिखी गईं। संस्कृत व्याकरण विषयक भी अनेक नये ग्रन्थों की रचना के साथ प्रायः सत्यार्थप्रकाश सहित सभी आवश्यक ग्रन्थों को अनेक भाषाओं में अनुवाद व सुसम्पादित कर प्रकाशित किया गया जिससे संस्कृत अध्ययन सहित आध्यात्मिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करना अनेक भाषा-भाषी लोगों के लिए सरल हो गया। एक साधारण हिन्दी पढ़ा हुआ व्यक्ति भी समस्त वैदिक साहित्य का अध्ययन कर सकता है। यह सफलता महर्षि दयानन्द, आर्यसमाज व इसके विद्वानों की देश व विश्व को बहुमूल्य देन है। यह सब कुछ होने पर भी आर्यसमाज की वैदिक विचारधारा का विश्व के लोगों पर जो प्रभाव होना चाहिये था वह नहीं हो सका। इसके प्रमुख कारणों को हमने लेख के आरम्भ में प्रस्तुत किया है। वह यही है कि देश व संसार के लोग महर्षि दयानन्द की मानवमात्र की कल्याणकारी विचारधारा व उनके यथार्थ भावों को अपनी-अपनी अविद्या, स्वार्थ, हठ और पूर्वाग्रहों वा दुराग्रहों के कारण जान नहीं सके। कुछ अन्य और कारण भी हो सकते हैं। इसके लिए आर्यसमाज को अपने संगठन व प्रचार आदि की न्यूनताओं पर भी ध्यान देना होगा और उन्हें दूर करना होगा। वेद वा धर्म प्रचार को बढ़ाना होगा और वैदिक मान्यताओं को सारगर्भित व संक्षेप में लघु पुस्तकों के माध्यम से प्रस्तुत कर उसे घर-घर पहुंचाना होगा। यदि प्रचारकों की संख्या अधिक होगी और संगठित रूप व समर्पित भाव से प्रचार किया जायेगा तो सफलता मिलेगी जिससे मानवता का कल्याण निश्चय ही होगा। ओ३म् शम्।

●●●

पृष्ठ १ का शेष.....

समय खड़ा होने से, उपासना धर्म का निरादर होता है ।

८. हम केवल यह चाहते हैं कि लोग वेदों की आज्ञाओं का पालन करें और केवल निराकार, अद्वितीय परमेश्वर की पूजा और उपासना करें, शुभ गुणों को ग्रहण और अवगुणों को त्याग दें ।

९. अपनी भलाई का काम तो गधे और अन्य पशु-पक्षी भी करते हैं । मनुष्यता तो इसी में है कि वह दूसरों का उपकार करे ।

१०. जीव अपने ही किए हुए कर्मों का फल भोग सकता है । इसलिए पुत्र-पौत्रादि का किया हुआ श्राद्ध-तर्पणादि परलोकगत जीव के लिए वृथा है ।

११. धर्मपूर्वक उपायों से अपनी उन्नति अर्थात् सुख की वृद्धि करना 'स्वार्थ' कहलाता है, परन्तु इस समय को लोग येनकेन प्रकारेण धर्माधर्म व विवेक रहित उपायों से अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं और परहानि व परदुःख का कुछ भी विचार नहीं करते, इस प्रकार स्वार्थान्ध हैं । परार्थ वा परोपकार वह है जिसके आचरण से मनुष्यों के दुःख की निवृत्ति हो ।

१२. न्यायप्रियता, स्वार्थ-त्याग, पराये हित में योग देना आदि उत्तम गुण सत्पुरुषों की कसौटी है । ऐसे पुरुष अपने उत्तम गुण और स्वभाव से पहचाने जाते हैं । वे योगाभ्यास, परोपकार, उदारता, न्याय-कर्तृत्व, ईश्वर-भक्ति और दयालुता आदि गुणों से युक्त होते हैं ।

१३. इतिहास में महाभारत और वाल्मीकि रामायण, मनुस्मृति तथा सूत्र ग्रन्थों को देखिए, वेदों का भाष्य देखिए । फिर आपको प्रकट हो जाएगा कि मूर्त्तिपूजा निरी गप्प है ।

१४. क्रियात्मक जीवन ही जीवन है । वेद-विहित शुभ कर्मों का करना ही निवृत्ति-मार्ग है । वही मनुष्य जीवित कहलाने का अधिकारी है जो अपने जीवन को लोकहित के कार्यों में लगाता है ।

१५. सांख्यकर्तृता (महर्षि कपिल) अनीश्वरवादी नहीं हैं । लोग ऋषिकृत टीकाओं को छोड़कर और भ्रष्ट लोगों की टीकाओं को पढ़कर ऐसा कहने लगे हैं। भागुरि ऋषि की टीका को पढ़ो, तुम्हारा सन्देह दूर हो जाएगा । 'ईश्वराऽसिद्धेः' सूत्र पूर्वपक्ष का है। आगे उसका उत्तर दिया गया है। यदि सांख्यकर्तृता नास्तिक होता तो वह पुनर्जन्म, वेद, परलोक और आत्मा को क्यों मानता ?

१६. कोई दर्शन दूसरे दर्शन का विरोधी नहीं है । छः कारणों से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है - न्याय दर्शन परमाणुओं का, मीमांसा दर्शन कर्म का, सांख्य दर्शन तत्त्वों के मेल का, योग दर्शन ज्ञान-विचार का, वैशेषिक दर्शन काल का और वेदान्त दर्शन परमात्मा का वर्णन करता है ।

१७. यदि एक मनुष्य केवल चने चबाकर रहे और ब्रह्मचर्य का पालन करे तो वह मांसाहारियों से कहीं अधिक बलिष्ठ हो सकता है ।

१८. यतियों के लिए संग्रह करने का निषेध है, परोपकार में व्यय करने के लिए धन लेना पाप नहीं है ।

१९. राजाओं (शासकों) के लिए ब्रह्मचर्य का पालन नितान्त आवश्यक है । राजाओं को चाहिए कि कानून बनाकर लोगों को ब्रह्मचर्य पालन पर बाध्य करें और बालविवाह को रोकें । मनुष्यों को सदाचारी और वैदिक धर्मानुयायी होना चाहिए ।

२०. भारत में आजकल जहाँ-तहाँ ब्राह्मण-श्रेणी ही पाचक का कार्य करती दिखाई दे रही है । प्राचीन भारत में ऐसा नहीं था । ब्राह्मण का कार्य रसोई बनाना नहीं है । यदि ऐसा होता तो अज्ञात वास के समय विराट नगर में भीमसेन प्रधान सूपकार कैसे बन सकते थे ?

२१. यह बात नहीं थी कि पहले समय में वर्ण जन्मगत न हो । जन्मगत तो था, परन्तु निम्नस्थ जाति गुण-कर्म से उच्चतर और उच्चतर कर्मदोष से निम्नतर हो जाती थी ।

२२. वेद स्वतः प्रमाण हैं । जैसे सूर्य का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए उसे दीपक से दिखाने की आवश्यकता नहीं होती, ऐसे ही वेद को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती ।

२३. विवाह में इतना धन व्यय करना अनुचित है । अकर्मण्य, भोजन लोलुप ब्राह्मणों को खिलाने से कुछ इष्ट नहीं होता । पुलिसवालों को खिलाने से फल होता है । वे रात्रि में आपके घरों की रक्षा करते हैं ।

२४. ऋषि-प्रणाली का अनुसरण करो, मुझे गुरु मानने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ?

२५. पंचवटी में श्रीरामचन्द्र वनवास के समय आकर रहे थे तो इससे उसे तीर्थ मानने का क्या कारण है ?

२६. मैंने वेदों के एक-एक मन्त्र पर पूर्ण विचार किया है । उनमें कोई भी युक्ति विरुद्ध बात नहीं है ।

२७. बिना आकार के प्रतिबिम्ब नहीं उतर सकता और जब परमेश्वर का आकार नहीं तो उसकी मूर्त्ति झूठी । यदि किसी का फोटो - ठीक-ठीक प्रतिकृति उतारकर स्मरण करने और देखने के लिए सामने रक्खी जाए तो ठीक है, परन्तु ब्रह्म की मूर्त्ति और अनुकृति उतारकर और नकल करना कुछ-का-कुछ कर देना है और सर्वथा मिथ्या और अवैध है ।

२८. जैसे माता-पिता अपने पुत्र को सिखाते हैं कि माता-पिता और गुरु की सेवा करो, उनका कहा मानो, ऐसे ही भगवान् ने स्तुति सिखाने के लिए वेद में अपनी स्तुति लिखी है ।

२९. भगवान् का मुख तो नहीं है । उसने अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा - चार ऋषियों के हृदय में वेद का प्रकाश किया, परन्तु वेद उन ऋषियों के बनाए हुए नहीं हैं । वे भगवान् के बनाए और कहे हुए हैं । वे चारों ऋषि कुछ न पढ़े थे और न कुछ जानते थे । भगवान् ने उनके द्वारा वेद कहे हैं । जैसे कोई मनुष्य पित्त वा सन्निपात में विवश होकर बोलने लगते हैं, वैसे ही भगवान् ने उन चारों के घट में और वाणी में वेदों का प्रकाश किया और उन्होंने इसके बल से विवश होकर कहा । अतः स्पष्ट है कि वेद भगवान् ने ही कहे हैं ।

३०. जीव अपनी जाति = प्रकृति वा स्वरूप में एक हैं और संख्या में अनेक हैं । जैसे एक मनुष्य-जाति है और दूसरी पशु-जाति है, इत्यादि । जैसे जल में जो रंग मिला दोगे जल वैसा ही हो जाएगा, वैसे ही जिस देह में यह जीव जाएगा वैसा ही उसका रंग-रूप और छोटा-बड़ा देह होगा, परन्तु जीव सबका एक-सा है, जैसा चींटी का वैसा ही हाथी का।

●●●

पृष्ठ ५ का शेष.....

भगवान् की प्रतिद्वन्द्वी बन गई।

एक बार एक व्यक्ति देहली में महात्मा गाँधी की समाधि पर माला फेर रहा था । गांधीजी आजीवन स्वयं को ईश्वर का सेवक मानते रहे परन्तु , उनके चेलों ने गांधीजी को ईश्वर का प्रतिद्वन्द्वी बना दिया । गांधी का पुजारी स्वयं को सीधा ईश्वर का पुजारी समझता है तथा आवश्यकता नहीं समझता कि दूसरे ईश्वर की खोज में यत्नशील रहे ।

आस्तिकता का कितना अंश ? :- साधारण आस्तिकों में आस्तिकता का कितना अंश है ? यह मैं एक घटना से स्पष्ट करता हूँ । प्राचीनकाल में राजाओं के सामने उनके शासन सम्बन्धी कोई शिकायत करने का किसी में साहस नहीं होता था । जब किसी को राजा का ध्यान किसी शिकायत की ओर खींचना होता था तो वह दरबार के बहुरुपिये की सहायता लेता था । केवल बहुरूपियों को यह अनुमति थी कि वे भली बुरी बातें अपने ढंग से कह सकते थे और शासक उससे परिणाम निकाल लेते थे ।

इस प्रकार अवध के नवाब के बहुरूपियों ने एक रूप बनाकर अपना खेल किया । एक बहुत बड़ा पीतल का हाण्डा भूमि पर रखा गया । उस पर एक छोटा हाण्डा , उस पर उससे एक छोटा हाण्डा इस प्रकार से एक बड़े हाण्डे पर पच्चीस तीस छोटे हाण्डे रख दिये गए । सबसे ऊपर वाली हाण्डी बहुत छोटी थी । अब एक बहुरूपिये ने प्रश्न किया , यह नीचे का हाण्डा क्या।

अवध के नवाब के कर्मचारी :- दूसरे बहुरूपिये ने उत्तर दिया , यह ग्राम के पटवारी की भेंट है । फिर दूसरे ने प्रश्न किया यह ऊपर का छोटा हाण्डा क्या है ? उत्तर मिला , यह कानूगो की भेंट है । तीसरा उससे छोटा तहसीलदार की घूस था । चौथा कोलैक्टर की और अन्त में सबसे छोटी हाण्डी के विषय में कहा गया कि यह माननीय नवाब साहेब का मालिया है । इस खेल में बहुरूपियों ने नवाब के सम्मुख यह प्रकट कर दिया कि आपके कर्मचारी सहस्रों रुपये की घूस डकार जाते है और स्वल्प राशि दरबार तक पहुँच पाती है ।

थे तो प्रतिद्वन्द्वी परन्तु निष्ठावान :- यह थी कहानी नवाब अवध के प्रबन्ध की जिसमें घूस में किसी प्रकार से कोई कमी नहीं छोड़ी गई थी । ये छोटे अधिकारी कर्मचारी नवाब के प्रतिद्वन्द्वी थे और ऐसे प्रतिद्वन्द्वी जो प्रतिद्वन्द्विता तो करते थे तथापि नवाब के आज्ञाकारी निष्ठावान कर्मचारी समझे जाते थे

परन्तु ये प्रतिद्वन्द्वी तो भीतर छुपकर भुजा को लिपटे साँप थे । उनको कैसे मारा जा सकता था ।

इस प्रकार यदि देखा जाय तो जो लोग ईश्वर पूजा की दुहाई देते हैं वहीं लोगों को ईश्वर के नाम पर अधिक ठगते हैं । जिस प्रकार मृतकों का श्राद्ध खाने वालों से कोई नहीं पूछता कि तुमने मृतकों के नाम पर जो भोजन प्राप्त किया वह मृतकों को पहुँचाया अथवा नहीं ? इसी प्रकार किसी गुरू अथवा पैगम्बर से कोई नहीं पूछता कि जो बात आप भगवान् के प्रतिनिधि के रूप में कहते हो वह कहाँ तक भगवान् का प्रतिनिधित्व करती है

कोई गुरू नहीं रोकता :- सच्चे गुरुओं का काम अपनी पूजा करवाना नहीं है । प्रत्युत अपने अनुयायियों को यह बताना है कि ईश्वर के स्थान पर किसी अन्य की पूजा मत करो । सच्चा गुरु वह है जो अपने चेलों को ऐसी कुचेष्टा से बचाये व रोकता रहे कि मैं ईश्वर नहीं हूँ और ईश्वर वह है जो आपका भी उपास्य है और मेरा भी । मैं ईश्वर का उसी प्रकार का एक पूजक हूँ जैसे तुम हो परन्तु , कोई गुरू ऐसा नहीं करता । उसका लाभ इसी में है कि लोग उसे ईश्वर का प्रतिनिधि समझते रहें । जो ईश्वर से माँगना चाहते हैं , वह उसी से माँगते रहें और विचित्रता यह है कि यह मनुष्य - पूजा लोगों को ईश्वर से बहुत दूर कर देती ।

चेले क्या माँगते हैं ? :- लोग गुरू के सामने जाकर यह नहीं कहते कि ईश्वरीय नियमों के पालन करने की विधियाँ बतायें कोई कहता है, मेरा उच्च अधिकारी रुष्ट हो गया है, प्रार्थना करें कि प्रसन्न हो जाय । कोई कहता है , मेरा बच्चा जो लम्बे समय से रोगग्रस्त हैं कैसे अच्छा हो जायेगा । कोई कहता है कि मेरे केस में मुझे सफलता मिल जाय

गुरु क्या करता है ? :- और आप जानते है कि गुरु क्या करता है ? वह दो मिनट के लिये आँखें बन्द कर लेता और फिर जो चाहे व्यवस्था दे देता है ।

मरने वाले नरक में जाय अथवा स्वर्ग में :- मुझे एक मित्र ने एक महात्मा का वृतान्त सुनाया जो बीस वर्ष पूर्व आर्यसमाजी थे परन्तु अब महात्मा बन गये हैं और लोगों को ईश्वर का दर्शन करवाने लगे और इस प्रकार उन्होने लाखों की सम्पत्ति एकत्र कर ली है । वह इसी प्रकार से कहते हैं कि तुम्हारा रोगी छः मास में निरोग हो जायेगा । किसी से कहते हैं , विपदा तो आ पड़ी है, दूर हो जायेगी । चेले प्रसन्न होकर चले जाते हैं और सहस्रों रुपयों की भेंट चढ़ा जाते हैं ।

जहाँ वह महात्मा जाते हैं उनका राजाओं , सरीखा सन्मान होता है। ईश्वर कहाँ है ? कैसा है ? क्या चाहता है ? उसको कैसे प्रसन्न कर सकते हैं ? इनकी कतई चर्चा नहीं होती । बड़े बड़े भण्डारे होते हैं और चढ़ावे चढ़ते हैं । मरने वाला नरक में जाय अथवा स्वर्ग में, उनको अपने हलवे माण्डे से काम । ये सब भगवान् के प्रतिद्वन्द्वी और आस्तिकता के शत्रु हैं । जब तक ये पुजायें रहेंगे कोई ईश्वर - पूजक नहीं बन सकता ।

आर्य मित्र
नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०९४१२६७८५७१, मंत्री-०९४१५३६५५७६, सम्पादक-९४५१८८१९७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

पृष्ठ ५ का शेष.....

भाग-२

यदि किसी का नाम राम है तो वह मर्यादा पुरुषोत्तम राम नहीं हो जायेगा, किसी का नाम सूरज है तो वह सूर्य नहीं होगा लेकिन नामकरण की भावना को समझ सकते है की वह बालक सूर्य की भांति तेजस हो ,राम की भांति आदर्श वादी हो ,कृष्ण की तरह दूध दही का सेवन करे और गौ पालन करे। इसलिए ईश्वर को उसके गुणों के आधार पर अलग अलग नाम दिए है ,परन्तु ईश्वर का निज नाम ॐ ही है।

'आम' (Om/Aum) ईश्वर (परमात्मा, परमेश्वर, ब्रह्म) का निज, सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम नाम है। 'ओम' का ठीक से उच्चारण हो सके इसलिए उसे 'ओ३म्' लिखा जाता है। कई बार लोग 'ओम' को 'ॐ' इस संकेत रूप में भी लिख देते हैं। 'ओ३म्' में जो तीन की संख्या '३' का समावेश है उसका तात्पर्य यह दर्शाने का है कि 'ओ' का उच्चारण प्लुत करना है। ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत - इन तीनों प्रकार से उच्चारण किया जाता है। ह्रस्व उच्चारण करने में जितना समय लगता है, इससे दुगना समय दीर्घ उच्चारण में और तीन गुना समय प्लुत उच्चारण में लगता है, इसलिए 'ओ३म्' में 'ओ' का प्लुत उच्चारण करना है, यही बताने के लिए 'ओ' के पश्चात् '३' संख्या लिखी जाती है। (गुजरात में कई बार लोग भूल से 'ओ३म्' का उच्चारण 'ओ३म्' करते हैं, क्योंकि गुजराती में 'रू' को '३' लिखा जाता है।)

साभारः सत्यार्थ प्रकाश

२१- (पा रक्षणे) इस धातु से 'पिता' शब्द सिद्ध हुआ है। 'यः पाति सर्वान् स पिता' जो सब का रक्षक जैसा पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उन की उन्नति चाहता है, वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है, इस से उस परमेश्वर का नाम 'पिता' है।

२२- 'यः पितॄणां पिता स पितामहः' जो पिताओं का भी पिता है, इससे उस परमेश्वर का नाम 'पितामहः' है।

२३- 'यः पितामहानां पिता स प्रपितामहः' जो पिताओं के पितरों का पिता है इससे परमेश्वर का नाम 'प्रपितामह' है।

२४- 'यो मिमीते मानयति सर्वा जीवान् स माता' जैसे पूर्ण कृपायुक्त जननी अपने सन्तानों का सुख और उन्नति चाहती है, वैसे परमेश्वर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है, इस से परमेश्वर का नाम 'माता' है।

२५- (चर गतिभक्षणयोः) आङ्पूर्वक इस धातु से 'आचार्य्य' शब्द सिद्ध होता है। 'य आचारं ग्राहयति, सर्वा विद्या बोधयति स आचार्य ईश्वरः' जो सत्य आचार का ग्रहण करानेहारा और सब विद्याओं की प्राप्ति का हेतु होके सब विद्या प्राप्त कराता है, इससे परमेश्वर का नाम 'आचार्य' है।

२६- (गृ शब्दे) इस धातु से 'गुरु' शब्द बना है। 'यो धर्म्यान् शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरुः' 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'। योग०। जो सत्यधर्मप्रतिपादक, सकल विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता, सृष्टि की आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरु और जिसका नाश कभी नहीं होता, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'गुरु' है।

२७- (अज गतिक्षेपणयोः, जनी प्रादुर्भावे) इन धातुओं से 'अज' शब्द बनता है। 'योऽजति सृष्टिं प्रति सर्वान् प्रकृत्यादीन् पदार्थान् प्रक्षिपति, जानाति, जनयति च कदाचिन्न जायते सोऽजः' जो सब प्रकृति के अवयव आकाशादि भूत परमाणुओं को यथायोग्य मिलाता, जानता, शरीर के साथ जीवों का सम्बन्ध करके जन्म देता और स्वयं कभी जन्म नहीं लेता, इससे उस ईश्वर का नाम 'अज' है।

२८- (चिती संज्ञाने) इस धातु से 'चित्' शब्द सिद्ध होता है। 'यश्चेतति चेतयति संज्ञापयति सर्वान् सज्जनान् योगिनस्तच्चित्परं ब्रह्म' जो चेतनस्वरूप सब जीवों को चिताने और सत्याऽसत्य का जनानेहारा है, इसलिए उस परमात्मा का नाम 'चित्' है। इन तीनों शब्दों के विशेषण होने से परमेश्वर को 'सच्चिदानन्दस्वरूप' कहते हैं।

२९- (शुन्धशुद्धौ) इस से 'शुद्ध' शब्द सिद्ध होता है। 'यः शुन्धति सर्वान् शोधयति वा स शुद्ध ईश्वरः' जो स्वयं पवित्र सब अशुद्धियों से पृथक् और सब को शुद्ध करने वाला है, इससे ईश्वर का नाम 'शुद्ध' है।

३०- निर् और आङ्पूर्वक (डुकृ करणे) इस धातु से 'निराकार' शब्द सिद्ध होता है। 'निर्गत आकारात्स निराकारः' जिस का आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर-धारण करता है, इसलिए परमेश्वर का नाम 'निराकार' है।

३१- (श्रि सेवायाम्) इस धातु से 'श्री' शब्द सिद्ध होता है। 'यः श्रीयते सेव्यते सर्वेण जगता विद्वद्भिर्योगिभिश्च स श्रीरीश्वरः'। जिस का सेवन सब जगत्, विद्वान् और योगीजन करते हैं, उस परमात्मा का नाम 'श्री' है।

३२- (लक्ष दर्शनांकनयोः) इस धातु से 'लक्ष्मी' शब्द सिद्ध होता है। 'यो लक्षयति पश्यत्यंकते चिह्नयति चराचरं जगदथवा वेदैरात्मैर्योगिभिश्च यो लक्ष्यते स लक्ष्मीः सर्वप्रियेश्वरः' जो सब चराचर जगत् को देखता, चिह्नित अर्थात् कृश्य बनाता, जैसे शरीर के नेत्र, नासिकादि और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जल के कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पाषाण, चन्द्र, सूर्यादि चिह्न बनाता तथा सब को देखता, सब शोभाओं की शोभा और जो वेदादिशास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम 'लक्ष्मी' है।

३३- 'सर्वाः शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीश्वरः' जो अपने कार्य करने में किसी अन्य की सहायता की इच्छा नहीं करता, अपने ही सामर्थ्य से अपने सब काम पूरा करता है, इसलिए उस परमात्मा का नाम 'सर्वशक्तिमान्' है।

३४- (णी प्रापणे) इस धातु से 'न्याय' शब्द सिद्ध होता है। 'प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः।' यह वचन न्यायसूत्रें के ऊपर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य का है। 'पक्षपातरहित्याचरणं न्यायः' जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों की परीक्षा से सत्य-सत्य सिद्ध हो तथा पक्षपातरहित धर्मरूप आचरण है वह न्याय कहाता है। 'न्यायं कर्तुं शीलमस्य स न्यायकारीश्वरः' जिस का न्याय अर्थात् पक्षपातरहित धर्म करने ही का स्वभाव है, इससे उस ईश्वर का नाम 'न्यायकारी' है।

३५- (दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु) इस धातु से 'दया' शब्द सिद्ध होता है। 'दयते ददाति जानाति गच्छति रक्षति हिनस्ति यया सा दया, बह्वी दया विद्यते यस्य स दयालुः परमेश्वरः' जो अभय का दाता, सत्याऽसत्य सर्व विद्याओं का जानने, सब सज्जनों की रक्षा करने और दुष्टों को यथायोग्य दण्ड देनेवाला है, इस से परमात्मा का नाम 'दयालु' है।

३६- 'द्वयोर्भावो द्वाभ्यामितं सा द्विता द्वीतं वा सैव तदेव वा द्वैतम्, न विद्यते द्वैतं द्वितीयेश्वरभावो यस्मिंस्तदद्वैतम्। अर्थात् 'सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यं ब्रह्म' दो का होना वा दोनों से युक्त होना वह द्विता वा द्वीत अथवा द्वैत से रहित है। सजातीय जैसे मनुष्य का सजातीय दूसरा मनुष्य होता है, विजातीय जैसे मनुष्य से भिन्न जातिवाला वृक्ष, पाषाणादि। स्वगत अर्थात् जैसे शरीर में आँख, नाक, कान आदि अवयवों का भेद है, वैसे दूसरे स्वजातीय ईश्वर, विजातीय ईश्वर वा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक परमेश्वर है, इस से परमात्मा का नाम 'अद्वैत' है।

३७- 'गण्यन्ते ये ते गुणा यैर्गणयन्ति ते गुणाः, यो गुणेभ्यो निर्गतः स निर्गुण ईश्वरः' जितने सत्त्व, रज, तम, रूप, रस, स्पर्श, गन्धादि जड़ के गुण, अविद्या, अल्पज्ञता, राग, द्वेष और अविद्यादि क्लेश जीव के गुण हैं उन से जो पृथक् है। इन में 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' इत्यादि उपनिषदों का प्रमाण है। जो शब्द, स्पर्श, रूपादि गुणरहित है, इससे परमात्मा का नाम 'निर्गुण' है।

३८- 'यो गुणैः सह वर्त्तते स सगुणः' जो सब का ज्ञान, सर्वसुख, पवित्रता, अनन्त बलादि गुणों से युक्त है, इसलिए परमेश्वर का नाम 'सगुण' है। जैसे पृथिवी गन्धादि गुणों से 'सगुण' और इच्छादि गुणों से रहित होने से 'निर्गुण' है, वैसे जगत् और जीव के गुणों से पृथक् होने से परमेश्वर 'निर्गुण' और सर्वज्ञादि गुणों से सहित होने से 'सगुण' है। अर्थात् ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो सगुणता और निर्गुणता से पृथक् हो। जैसे चेतन के गुणों से पृथक् होने से जड़ पदार्थ निर्गुण और अपने गुणों से सहित होने सगुण, वैसे ही जड़ के गुणों से पृथक् होने से जीव निर्गुण और इच्छादि अपने गुणों से सहित होने से सगुण। ऐसे ही परमेश्वर में भी समझना चाहिए।

३९- 'अन्तर्यन्तुं नियन्तुं शीलं यस्य सोऽयमन्तर्यामी' जो सब प्राणी और अप्राणिरूप जगत् के भीतर व्यापक होके सब का नियम करता है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'अन्तर्यामी' है।

४०- 'यो धर्म्मे राजते स धर्मराजः' जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित, धर्म ही का प्रकाश करता है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'धर्म्मराज' है।

क्रमशः अगले अंक में.....

सेवा में,

.....

.....

.....

संसार के सात प्रतिष्ठान

-मुनि रघुराज शास्त्री

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।

अथर्ववेद १/१/१

यद्यपि यह मंत्र सात विभक्तियों एवं तीन वचनों के लिए प्रयुक्त होता है किन्तु इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि संसार को ७ प्रतिष्ठानों और उनके तीन अंगों का वर्णन परमेश्वर ने कर दिया है। चूँकि वेद की शिक्षा समग्र विश्व के लिए है, किसी एक ही देश विशेष के लिए नहीं है। माता भूमि पुत्रो ऽहं पृथिव्याः ...भूमि मेरी माता है और मै पृथ्वी का पुत्र हूँ। इसी के आधार पर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की कल्पना हमारे ऋषियों ने की है। सारी वसुधा ही कुटुंब है। जैसे एक कुटुम्ब में सभी लोग रहते है । उन सबकी देखभाल कुटुम्ब का स्वामी करता है, इसी प्रकार इस सम्पूर्ण धरा की रक्षा करना भी आर्यों का काम है।

वेद भगवान ने आदेश भी दिया है। कि 'अहं भूमिमददामार्याय' मैंने यह भूमि आर्य (श्रेष्ठ) को दी है। अर्थात् इस भूमि (पृथ्वी का स्वामी आर्य है। परमात्मा ने आर्य को ही भूमि का प्रबन्ध करने का आदेश दिया है। इस आदेश का पालन करने के लिए ऋग्वेद में मंत्र दिया है। त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि। परि विश्वानिव भूषथः सदासि । ऋ० ३/३८/६ । ईश्वर उपदेश करता है कि (राजाना) राजा और प्रजा के पुरुष मिलकर (विदथे) सुख प्राप्ति और विज्ञान वृद्धिकारक राजा प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में (त्रिणि सदांसि) तीन सभा अर्थात् विद्यार्य सभा, धर्मार्थ सभा और राजार्य सभा नियत करके (पुरूणि) बहुत प्रकार के (विश्वानि) समग्र प्रजा सम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को (परिभूषथः) सब ओर से विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें। तीन सभायें प्रत्येक प्रतिष्ठान में रखने से २१ हो जाती हैं। विश्व में ७ प्रतिष्ठान बनाकर और प्रत्येक प्रतिष्ठान में ३-३ सभायें होंगी तो संसार में सुख समृद्धि होगी। सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः - सभी सुखी एवं नीरोग हो।

सात प्रतिष्ठान हैं-

१. ग्राम सभा २ दशक समा ३. शतक सभा ४ दश शतक सभा ५. शत शतक सभा ६. राष्ट्र सभा ७.विश्व सभा (संयुक्त राष्ट्र संघ)

पहले भी हमारे पूर्वजों ने संसार में राज किया है। महर्षि दयानंद सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में लिखते है ''सृष्टि से लेकर ५ सहस्र वर्षो से पूर्व समय पर्यन्त आर्यो का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अन्य देश में मांडलिक अथवा छोटे छोटे राजा रहते थे।

अब भी आर्यों का चक्रवर्ती राज्य हो सकता है। यदि वेदों की चयन प्रणाली अथर्व १८/४/३७ प्रतिष्ठात्मक (नामांकन चुनाव चिह्न जमानत रहित) शून्य खर्च वाली चुनाव प्रणाली लागू हो जाये। इस प्रणाली के बिना संसार का कल्याण नहीं हो सकता । इस प्रणाली में राजा का चुनाव सर्व सम्मति से होता है। यत्र विश्वं भवत्येकनीडम जहां संसार एक घोसला होता है।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से चैत्र शुल्क सप्तमी तक सभी प्रतिष्ठानों के चुनाव होते है अष्टमी को चक्रवर्ती सम्राट का चयन और रामनवमी को तिलक किया जाता है। वैदिक व्यवस्था से दूर होने के कारण सारा संसार अंधकारमय है। यदि प्रकाश में आना है तो वैदिक प्रतिष्ठात्मक चयन प्रणाली लागू करके संसार को अंधकार से दूर करें। असतो मा सदगमय, तमसो मा ज्योति गमय मृत्योर्मा ऽमृतं गमय।

स्वामी–आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक–पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5–मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है–सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।